संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की योजना
'भारत की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत एवं परम्पराओं का संरक्षण'
के अन्तर्गत

ब्रज की नृसिंह लीला परम्परा

की

सर्वेक्षण रिपोर्ट

ब्रज संस्कृति शोध संस्थान

मन्दिर श्री धाम गोदा विहार परिसर, गोपेश्वर मार्ग, वृन्दावन-281121, मथुरा, उ.प्र.
मोबाइल: 9219858901, ईमेल : bcrivrindavan@gmail.com

अनुक्रम

(1)	नृसिंह लीला: प्राचीन आख्यान	–	3
(2)	नृसिंह नृत्य नाट्य की पूर्व पीठिका	–	9
(3)	नृसिंह नृत्य नाट्य: मथुरा	–	15
(4)	नृसिंह नृत्य नाट्य: वृंदावन	–	21
(5)	वृंदावन के नृसिंह मंदिर	–	29
(6)	कुछ प्रसिद्ध भारतीय नृसिंह मंदिरों की सूची	–	34
(7)	नृसिंह नृत्य नाट्य के पात्रों के पौराणिक संदर्भ	–	36
(8)	संदर्भ ग्रंथ एंव अन्य संकलन सामग्री	–	42

नृरसिंह लीला: प्राचीन आख्यान

नर कर कमल वरे नखमर भुत श्रृंगम!
दलित हिरण्यकशिपु तनु भृगंम्!
केशव! धृत नरहरि रूप जय जगदीश हरे!

हे केशव! आपने नृसिंह रूप धारण कर श्रेष्ठ कर कमल पर आश्चर्य पैदा करने वाले अद्भूत श्रृंग रूप नखों की धारण किया और उन्हीं नखों से दैत्यराज हिरण्यकशिपु का विनाश किया। इस कारण हे भक्त वत्सल भगवान! तुम्हारी सदैव जय हो!
(12 वीं सदी में जयदेव रचित गीतगोविंद।) प्रथम सर्ग। मालव रागे रूपकताले अष्टपदी/4) भारतीय विष्णु उपासक परंपरा में दशावतार एक प्राचीन विश्वास है। प्राय: सभी प्रकार के वैष्णव धार्मिक साहित्य में विष्णु के दशावतारों की चर्चा मिलती है। काल क्रम और पाठभेद से कहीं कहीं 24 अवतारों की भी उल्लेख होता है, किंतु उनमें भी प्रारंभिक दशावतारों की गणना यथावत रहती है। इन सभी में मीन, कच्छप और वाराह के पश्चात् नरसिंह या नृसिंह अवतार का उल्लेख अवश्य ही आता है। इस संदर्भ में 'नृसिंह पुराण' का महत्व, इस अवतार की प्रसिद्धि का उत्कृष्ट उदाहरण है। उल्लेखनीय है कि 18 पुराणों की पारंपरिक गणना में कूर्म, मत्स्य, वाराह और वामन आदि अवतारों के नाम पर भी पुराण हैं।

नरसिंह या नृसिंह - भारतीय वैष्णव परंपरा के अद्भुत अवतार हैं.! वह एक ऐसे महाबली और प्रचंड 'देव' हैं, जो उस कथित अपराजेय माने जाने वाले दैत्य या शैतान का भी वध करने में समर्थ हैं, जो मानवीय बुद्धि की सीमा में पूरी तरह से 'अमरत्व' को पा चुका है। भागवत धर्म की यह चिंतन - मनीषा, उस कथित 'अमरत्व रूपी 'अहंकार' का भी पूरी तरह विनाश करने में समर्थ उस दिव्य परमात्मा या विष्णुत्व का प्रतीक है।

नृसिंह पुराण सहित, समस्त धार्मिक साहित्य में नरसिंह अवतार की कथा अत्यंत सरल किंतु रोमांचक है। कथा है कि दिति के पुत्र दैत्यराज हिरण्यकश्यपु अपनी कठोर तपश्चर्या से जगत-सृष्टा ब्रह्मा से ऐसा वरदान प्राप्त करने में सफल हो जाता है, जिससे कि उसकी मृत्यु किसी भी प्रकार संभव न हो सके। नृसिंह पुराण में इस रोचक प्रसंग को कुछ इस प्रकार कहा गया है-

पूर्व काल में दिति का पुत्र हिरण्यकशिपु महान प्रतापी हुआ। उसने अनेक सहस्र वर्षों तक निराहार रहते हुए तपस्या की उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्माजी ने उस दानव से कहा-''दैत्येंद्र! जो तुम्हारे मन को प्रिय लगे, वही वर मांग लो।'' दैत्य हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर उन देवेश्वर से विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा- ''भगवान! यदि आप मुझे वर देने को उद्यत हैं, तो मैं जो जो मांगता हूं। वह सब देने की कृपा करें। मैं न सूखी वस्तु से मरूं, न गीली से, न जल से, न आग से। न काठ से, न कीड़े से।और न पत्थर या हवा से ही मेरी मुत्यु हो। न शूल अथवा

किसी अन्य शस्त्र से, न पर्वत से। न मनुष्यों से, न देवता, असुर, गंधर्व, अथवा राक्षसों से ही मेरी मृत्यु हो। मैं न घर के भीतर मरूं न बाहर, न मैं दिन में मरूं, न रात में, तथा आपकी कृपा से मुत्यु के हेतु भूत अन्य कारणों से भी मेरी मृत्यु न हो। देव देवेश्वर! मैं आप से यही वर मांगता हूं।''

दैत्यराज हिरण्यकशिपु के यों कहने पर ब्रह्माजी ने उससे कहा-दैत्येंद्र! तुम्हारे महान तप से संतुष्ट होकर मैं इन परम अद्‌भुत वरों को दुर्लभ होने पर भी तुम्हें दे रहा हूं। दूसरे किसी को मैंने ऐसा वर नहीं दिया है,। व दूसरों ने ऐसी तपस्या भी नहीं की है। दैत्यपते! तुम्हारे मांगे हुए. सभी वर मैंने तुम्हें दे दिए। वे सब तुम्हें प्राप्त हों। महाबाहो! अब जाओ और अपने तप के बढ़े हुए उत्कृष्ट फल को भोगो।'' इस प्रकार पूर्व काल में दैत्यराज हिरण्यकशिपु को अभीष्ट वर देकर ब्रह्माजी अपने परम उत्तम लोक को चले गए। उस बलवान दैत्यने भी वर पाकर बल से उन्मत्त हो श्रेष्ठ देवताओं को युद्ध में जीतकर उन्हें स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरा दिया। तथा वह स्वंय स्वर्ग लोकमें रहकर वहां का सर्वशक्ति संपन्न राज्य भोगने लगा। (नरसिंह पुराण। अध्याय 40। श्लोक 2 - 15)

यह कथा यहां से आगे हिरण्यकशिपु के अति अहंकार और अत्याचारों की लोमहर्षक कथा है। वह यज्ञ,दान, होम आदि के निषेध के साथ साथ अपनी ही।' सर्वशक्तिमान् के रूप में पूजा' के आदेश जन सामान्य, सभी देवताओं को भी देता है।और इस तरह अपने बल और आतंक के बूते स्वयं पूजित हो जाता है।

पारंपरिक कथा के अनुसार इन्द्रादि सभी देवता, जो कि हिरण्यकशिपु के भय से मानव रूप में पृथिवी पर विचरते थे,ने बहुत समय बीत जाने के बाद, देव गुरु बृहस्पति से इस हिरण्यकशिपु के 'विनाश' का कारण पूछा, तो बृहस्पति ने कहा कि अब हिरण्यकशिपु के 'पुण्य' समाप्त हो गए हैं और यह अपने भाई हिरण्याक्ष के शोक से बहुत पीड़ित है, क्योंकि उसका पूर्व में वराह अवतार में वध हो चुका है। बृहस्पति ने देवताओं को शेषशायी विष्णुभगवान की शरण में जाकर उनसे इसका उपाय पूछने को कहा। महादेव शिव समेत् सभी देवता एक शुभतिथि में विष्णु के पास गए और उनकी स्तुति कर अपना मंतव्य बताया। (यहां पर शिव द्वारा विष्णु के 100 नामों की स्तुति का बड़ा ही सुंदर वर्णन है- अध्याय 40/श्लोक - 36 - 53) विष्णु ने कुछ दिनों की 'प्रतीक्षा' के बाद हिरण्यकशिपु के वध का आश्वासन देकर विदा किया। विष्णु ने यहां स्पष्ट कर दिया कि शीघ्र ही हिरण्यकशिपु के यहां 'प्रहलाद' नामक एक बालक का जन्म होगा, जो विष्णु-भक्त होगा। वह अपने पिता से विद्रोह

करेगा। तब मैं उसका वध करूंगा। आगे की कथा में प्रहलाद जन्म की कथा है। हिरण्यकशिपु ने, एक बार पुनः कैलाश पर्वत पर जाकर तपस्या की। उसके तप से ब्रह्मा परेशान हुए तो वहां नारद जी प्रकट हुए। अपने पिता की उद्विग्नता को शांत करके वह एक अन्य पर्वतवासी मुनि को साथ लेकर वहां पहुचे जहां हिरण्यकशिपु तपस्या कर रहा था। वहां दोनों ने ''कलविंक' नामक पक्षी-विशेष का रूप धारण कर, एक वृक्ष की डाल पर बैठ कर तीन बार जोरों से- ''ओं नमो नारायण'' इस मंत्र का उच्चारण किया। इस नामोच्चारण से हिरण्यकशिपु ने क्रोधित होकर धनुषपर बाण का संधान किया, तो दोनों वहां से पलायन कर गए। क्रोधित होकर हिरण्यकशिपु भी अपने नगर लौट आया।

उस समय, दैव संयोग से 'कयाधु' नामक उसकी पत्नी रजस्वला से निवृत होकर ऋतुस्नाता हुई थी। कयाधु ने अपने पति से शीघ्र लौट आने का कारण पूछा, तो हिरण्यकशिपु ने 'कलविंक' नामक 2 पक्षियों द्वारा' ॐ नमो नारायण' नामक तीन बार बोले गए मंत्र का उल्लेख करते हुए अपने बाण अनुसंधान और पक्षियों के पलायन की पूरी घटना सुनाई। 'अपशकुन' के कारण लौटना भी बताया। संभवतः संभोग-काल में यह वृत्तांत हुआ, तो वीर्यस्खलन के समय ही 'कयाधु' गर्भवती हुई और समय पर प्रहलाद का जन्म हुआ। जो कालांतर में विष्णुभक्त हो गया।

बाल्यकाल से ही प्रहलाद विष्णुभक्त हो गया। उसे शिक्षा के लिए गुरुकुल भेजा गया। वहां भी उसने गुरु से यही विष्णु भक्ति का पाठ ही सीखा। एक बार वह अपने पिता के घर लौटा,तो पिता के पूछने पर भी उसने विष्णुभक्ति का ही पाठ सीखने का उल्लेख पिता से किया। इस पर हिरण्यकशिपु अत्यंत क्रोधित हो गया। उसने छोटी आयु के पुत्र को इसके लिए पर्याप्त डांटा। उसने अपने अनुचरों से कहकर उसके गुरु को बुलवाया और उससे विष्णुभक्ति की शिक्षा अपने पुत्र को देने के लिए पर्याप्त डांटा । साथ ही अपने पुत्र को भी इस शिक्षा से दूर रहने को कहा। उसने अपने अंहकार का उल्लेख किया और गुरु को भविष्य में अपने पुत्र को ऐसी शिक्षा न देने को कहकर भगा दिया। वह गुरु भी, भय से, हिरण्यकशिपु को वचन देकर वहां से चला गया।

गुरु के यहां से अपनी शिक्षा पूर्णकर, जब कुमार प्रहलाद पुनः लौटा, तो उसने राज्याभिषेक की दृष्टि से अपने कुमार पुत्र की पुनः एक बार 'परीक्षा' की तो, प्रहलाद ने पुनः अपने पिता के समक्ष वहीं 'विष्णुभक्ति' का ही विवरण विस्तार से प्रस्तुत किया, तो हिरण्यकशिपु के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने अपने अनुचरों को बुलाकर अपने पुत्र की 'वध' की आज्ञा दे दी। कथा के अनुसार हिरण्यकशिपु के अनुचरों के चलाए सारे अस्त्र शस्त्र 'निरर्थक' हो गए, प्रहलाद बचे रहे और अनुचर भयभीत होकर भाग गए।

यह देखकर हिरण्यकशिपु ने भयभीत, होकर कुछ भयंकर जहरीले सर्पो को प्रहलाद का वध करने को भेजा।, किंतु वे भी प्रहलाद को नहीं मार सके। उल्टे वे अपने जहरीले, पैने दांत भी, विष्णु कृपा के कारण तुड़वा बैठे। परास्त होकर वे सर्प भी चले गए। थक हारकर अपने मंत्रियों की सलाह पर हिरण्यकशिपु ने प्रहलाद को अपने पास बुलाकर उसे फिर से समझानेकी कोशिश की। लेकिन प्रहलाद ने विष्णु भक्ति की अपनी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ा और वह पुनः अपने गुरू के पास चले गए। गुरु के आश्रम में शिक्षा प्राप्ति के दौरान एक बार प्रह्लाद के पिता के मंत्रियों के कुछ कुमार भी उनसे मिलने आए। प्रहलाद ने उन्हें भी वही विष्णु भक्ति संबंधी बातें बताई। कुमारों द्वारा प्रहलाद के इस अपरिमित ज्ञान का रहस्य पूछे जाने पर प्रहलाद ने उन्हें बताया कि जब वह अपनी माता के गर्भ में थे, उनके पिता तपस्या के लिए वन में गए थे। उसी समय इंद्र ने उनके पिता के राज्य पर आक्रमण करके उनकी माता का कामातुर होकर अपहरण किया था। तब देवर्षि नारद ने मेरी माता को संरक्षित किया और वे उन्हें अपने आश्रम में ले आए। उसी समय उन्होंने मेरी माता को जो धार्मिक ज्ञान दिया, उसी के परिणाम से आज मैं कुछ जान पाया हूं।

एक समय, हिरण्यकशिपु रात्रि में गुप्तरूप से अपने नगर-भ्रमण पर था, तभी उसे एक स्थानपर 'जयराम' के नाम का संकीर्तन सुनाई दिया। दैत्यराज ने इसे अपने पुत्र की ही करतूत समझा। उसने तत्काल कीर्तन बंद करवाया और वहां के पुरोहित ब्राह्मणों को खूब डांटा और फटकारा। पुनः अपने महल में आकर उसने क्रोध में आकर अपने अनुचरों को बुलाकर कहा कि गहरी निद्रा में सोते समय प्रहलाद को नागपाश में बांधकर बीच समुद्र में फेंक दो, ताकि वह मर जाए। यह स्थिति देखकर स्वंय समुद्र देव ने प्रहलाद को किनारे लगाया और क्षमा याचना करते हुए उन्हें अनेक रत्न भेंट किए। तभी वहां गरूड़ भी आ गए। गरूड़ ने सारे सर्पो का भक्षण करके प्रहलाद को नागपाश से मुक्त किया। प्रहलाद ने समुद्रदेव की याचना पर वे रत्न ग्रहण कर लिए और समुद्र देव से अपने स्थूल नेत्रों से ही भगवान जगन्नाथ अर्थात् साक्षात विष्णु के दर्शनों की अभिलाषा प्रकट करते हुए उपाय पूछा। समुद्र ने प्रहलाद को विष्णु का स्तवन करने की बात कही।

समुद्र की बताई सलाह के अनुसार प्रहलाद ने भगवान विष्णु का स्तवन, समुद्र के तट पर ही करना प्रारंभ कर दिया। अपने भक्त की पुकार पर विष्णु वहां शीघ्र ही अपने चतुर्भुज रूप में प्रकट हो गए और उन्होंने भक्त प्रहलाद को उठाकर अपने सीने से लगा लिया। इस तरह

प्रहलाद को अपने आराध्य परम नारायण भगवान विष्णु के साक्षात दर्शन हो गए। भगवान के दर्शन से विमुग्ध हो रहे भक्त प्रहलाद से भगवान ने कहा–'भयभीत न होओ। भक्तों की कामनाएं पूर्ण करने के लिए मेरे अनेक अवतार हुआ करते हैं। अत: तुम भी बताओ, तुम्हें कौन – सी वस्तु प्रिय है।'' प्रहलाद द्वारा केवल कृपा दृष्टि और निरंतर दर्शन की प्रार्थना कहने पर, भगवान द्वारा वात्सल्य भाव से 'कुछ न कुछ' मांगने के कथन पर प्रहलाद ने उनसे स्वयं को गरूड़ की तरह अपना 'दास' बनाने की प्रार्थना की। इस पर, भगवान ने उन्हें सब 'अभीष्ट की प्राप्ति' का वर देकर कहा कि वह शीघ्र ही नृसिंह रूप में अवतार लेंगे और हिरण्यकशिपु का वध करेंगे। प्रहलाद कहीं उनके नृसिंह रूपको देखकर भयभीत न हो जाएं–इसलिए अपने अवतरण की पूर्व घोषणा करके विष्णु अंतर्धान हो गए। इस लीला को जाग्रत स्वप्नवत समझ कर वह अपने नगर स्थित गुरू के आश्रम में आ गए।

नागपाश के बंधन से भी मुक्त होकर और गहरे समुद्र से भी जीवित लौट आने की रोमांचक घटना सुनकर सभी दैत्य अनुचर विस्मित रह गए और उन्होंने इस घटना की सूचना हिरण्यकशिपु को दी। क्रोध और विस्मय से भरे हिरण्यकशिपु ने प्रहलाद को तत्काल अपने सामने प्रस्तुत करने का आदेश दिया। इस पर उसके अनुचर प्रहलाद को क्रूरतापूर्वक पकड़कर ले आए। अकंपित प्रहलाद अपने पिता से दूर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने क्रोधावेश में अपनी चंद्रहास नामक तलवार निकाल कर गरजते हुए कहा रे मूढ़! तेरा विष्णु कहां है! आज वह तेरी रक्षा करे! तूने कहा था कि वह सर्वत्र है। फिर वह इस खंभे में क्यों दिखाई नहीं देता! यदि तेरे विष्णु को इस खंभे के भीतर देख लूंगा। तब तो तुझे नहीं मारूंगा। और यदि ऐसा नहीं हुआ, तो इस तलवार से तेरे दो टुकड़े कर दिए जाएंगे''

प्रह्लाद ने भी ऐसी स्थिति देखकर अपने इष्ट प्रभु विष्णु का तत्काल ध्यान किया, और प्रभुवचन को स्मरण किया।

तभी प्रह्लाद ने आश्चर्य से देखा कि दर्पण के समान साफ स्वच्छ खंभा, जो अभी तक खड़ा था, दैत्यराज की तलवार की आघात से अचानक फट गया, तथा उसके भीतर से अनेक योजन के आकार वाला अत्यंत रौद्र एंव महाकाय नरसिंह रूप दिखाई दिया। जो दानवों को भी भयभीत करने वाला था। उसके बड़े बड़े नेत्र, विशाल मुख, बड़ी बड़ी दाढ़ें और लंबी लंबी भुजाएं थीं। उसके नख बहुत बड़े और पैर विशाल थे। उसका मुख कालाग्नि के समान दैदीव्यमान् था। जबड़े कान तक फैले हुए थे। और वह बहुत ही भयानक दिखाई देता था।

शीघ्र ही नरसिंह भगवान खंभे से बाहर प्रकट हो गए और फिर वहां महासंग्राम छिड गया। हिरण्यकशिपु के सैनिकों ने इस अवतार पर अपने शस्त्रों

से हमले शुरू कर दिए तो नरसिंह प्रभु ने प्रत्युत्तर में सभा मंडप का सर्वनाश करना शुरू कर दिया। नरसिंह ने सभी आक्रमणकारियों को पल भर में ही मार डाला। इसके बाद वे भयंकर सिंहनाद करने लगे। इस पर हिरण्यकशिपु ने अपने 88 हजार दैत्य सैनिकों के साथ नृसिंह पर आक्रमण किया तो नृसिंह ने उन सभी का वध किया और वे बार-बार गर्जना करने लगे। इसके साथ ही, वे उसके सुंदर राजभवन को भी तहस-नहस- विध्वंस करने लगे। युद्ध जारी था। हिरण्यकशिपु के कहने पर दसों दिशाओं से दैत्य नरसिंह पर हमले कर रहे थे। वाणों की वर्षा कर रहे थे, जबकि नरसिंह उन्हें क्षण मात्र में ही नष्ट कर देते थे। ऐसी भयावह स्थिति देखकर सभी दैत्य अंतोगत्वा प्राण बचाकर भाग चले। जब सूर्य अस्ताचल को जाने लगे, यानी संध्या हो गई, तब तक भगवान नृसिंह देव दैत्य सेना युद्ध करती रही। सूर्य के अस्तांचल में जाते ही, नृसिंह देव ने हिरण्यकशिपु को बलपूर्वक पकड़ लिया। फिर, उसे घर के दरवाजे (देहरी) पर बैठकर, हिरण्यकशिपु को अपनी जांघों पर लिटा लिया और अति रोष पूर्वक अपने पैने नखों से पत्तों की भांति उसे विदीर्ण करने लगे। हिरण्यकश्यपु इस स्थिति से घबरा कर आर्तनाद करने लगा। नरसिंह देव ने उसका हृदय फाड़ कर अपने नखों में छिपा लिया, तो वह मायावी दैत्य कुछ क्षणों के लिए गायब ही हो गया। इसके बाद, नरसिंह देव ने जब अपने दोनों हाथों को झाड़ा तो हिरण्यकशिपु के नखों में छिपे उसके दोनों टुकड़े जमीन पर गिर पड़े और तभी वहां ब्रह्मा आदि अनेक देवता वहां आए और नृसिंह देव पर फूलों की वर्षा करने लगे और पूजन करने लगे।

इसके बाद स्वंय ब्रह्मा जी ने भक्त प्रहलाद को दैत्यों के राजा के पद पर राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया। भगवान विष्णु ने भी समस्त देवताओं सहित इन्द्र को भी स्वर्ग के राज्य पर स्थापित किया। इसके बाद, भगवान नृसिंह भी संपूर्ण लोकों का हित करने के लिए श्री शैल के शिखर पर जा पहुंचे। वहां देवताओं से पूजित होकर और प्रसिद्धि प्राप्त कर वह भक्तों के हित और अभक्तों का नाश करने के लिए वहीं रहने लगे।

नृसिंह भगवान के अवतार की यह संक्षिप्त कथा, थोड़ा विस्तार से, नरसिंह पुराण के अध्याय 40 से लेकर 44 तक, अर्थात् 5 अध्यायों में लिखी गई है। अन्य

पुराणों मे भी संक्षिप्त में या दिशा निर्देश के रूप में, इस कथा की विशद टिप्पणियां मिलती हैं।

नृसिंह नृत्य नाट्य की पूर्व पीठिका

इस समय ब्रजभूमि में भगवान नृसिंह देव के अनेक मंदिर है और ये काफी पुराने भी हैं। मथुरा जिले की छाता तहसील के अंतर्गत फालैन नामक गांव में एक विशाल 'प्रहलाद कुंड' है, और होली के अवसर पर यहां एक बड़ी ''होलिका दहन' की जगह 'होली' सजाई जाती है। पारंपरिक रूप से एक पंडा, जो स्थानीय ही होता है, रात्रि को लगभग 12 से 1 बजे बीच प्रहलाद कुंड में डुबकी लगाकर बड़ी तीव्रता से इस धधकती, ऊंचे लपटों वाली होलिका में से कूदकर बाहर निकल जाता है। इस रोमांचक दृश्य को देखने के लिए हर साल हजारों ग्रामीण और दर्शक एकत्र होते हैं। इसे यहां लोक मनोरंजन के साथ साथ पांरपरिक धार्मिकता से जोड़ दिया गया है। पारंपरिक लोक कथा यह है कि हिरण्यकशिपु ने सब ओर से निराश होकर अपने पुत्र को मारने के लिए एक बड़ी जलती हुई चिता में प्रहलाद को, अपनी बहन होलिका की गोद में बिठाकर मारने की कोशिश की थी। क्योंकि होलिका को यह वरदान था कि वह अग्नि में नहीं जलेगी। लेकिन होलिका जल गई और प्रहलाद जीवित अग्नि की लपटों से बाहर निकल आए। इस 'स्मृति' के आधार पर यह 'मेला' यहां हर साल फाल्गुन सुदी चतुर्दशी को लगता है और लोग हजारों की संख्या में यह देखने आते हैं। कहना मुश्किल है कि यह प्रथा कब से है, किंतु लोक विश्वास है कि (स्थानीय ग्रामीण भी यही बताते हैं) यह हमारा विश्वास है कि यह पंरपरा सदियों पुरानी है। वैसे गांव का मंदिर 'राधा कृष्ण' का है और 'प्रहलाद कुड' के अलावा 'नृसिंह देव' की कथा का और को कोई स्रोत नहीं है। यहां प्रहलाद का मंदिर भी है, और नृसिंह देव का भी एक मंदिर में विग्रह प्रहलाद का हाल ही में जीर्णेद्धार भी हुआ है।.

ब्रजभूमि में भगवान नृसिंह देव के मंदिरों तथा लोक नृत्य नाट्य की चर्चा से पूर्व हमने यहां इस 'मेले' की चर्चा सायास इस लिए भी करना आवश्यक समझा, क्यों कि हम भी, सुविख्यात प्राच्यविद डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की इस बात से सहमत हैं कि अपने देश में धर्म की ऐसी रीति प्राय: देखी जाती है कि पुराने देवी-देवता भी किसी न किसी रूप में चलते रहते हैं और जनता में उनकी पूजा मान्यता भी रहती है। विशेषत: 2 चीजों का लोप मुश्किल से ही होता है- एक, तो देवता के धार्मिक स्थान का, और दूसरा उसके निमित्त जुड़ने वाले मेले का। कालांतर में चोला बदल जाने पर भी हम इन दोनों प्रथाओं को हम पहचान सकते हैं। (वासुदेव शरण अग्रवाल रचना संचयन। यक्षमह- पृष्ठ 541, संपादन: कपिला वात्स्यायन)

वासुदेव शरण अग्रवाल की यह टिप्पणी, दरअसल भारत में 'यक्ष पूजा' के संदर्भ में थी। उन्होंने यक्षमह, गिरिमह इंद्रमह, रूद्रमह, नागमह, वृक्षमह,

सागरमह, स्तूपमह और चैत्यमह- शीर्षकस्थ बड़े बड़े शोध आलेखों के जरिए बड़े ही तार्किक ढंग से यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि हमारे सभी प्राचीन मेलों का संबध किसी न किसी रूप में पुरातन देवी-देवताओं की ही पूजा-उपासना के अवशेष हैं। उदाहरण के रूप में उन्होंने भारतीय ग्राम्यांचलों तथा छोटे कस्बों में आज भी पूजित देवी-देवताओं के ' थान और 'अस्तान' के प्रति लोक आस्था को प्राचीन यक्ष और यक्षणियों की पूजा के ही अवशेष माना है। वे 'पीर' या 'बरम' देवता या 'ब्रह्म देवता' की भी इसी प्रसंग में वृहद् व्याख्या करते हैं। प्रसंग-वश यहां यह जानते चलना भी रोचक होगा कि उन्होंने ब्रजक्षेत्र में गोवर्धन पूजा को भी इंद्रमह से जोड़कर अपने 'इंदमह' शोध आलेख में प्रस्तुत किया है। अस्तु।

तो क्या फालैन स्थित ''प्रहलाद कुंड'' तथा 20 - 25 फुट ऊंची धधकती अग्नि के दावानल कुंड में से निकलने वाले 'पंडा' के 'आनुष्ठानिक कार्य' को हम 'नृसिंह युद्ध नाट्य' की पूर्व पीठिका मान सकते हैं? कारण, उस भयावह अग्नि कुंड में से एक छलांग में बाहर निकलना, स्वंय में किसी 'युद्ध कौशल, से तो कम नहीं हैं, वह यह कार्य भी, पूर्णत: ''धार्मिक अनुष्ठान'' की तरह से ही करता है। अग्नि कुंड रूपी दावानानल से निकलने से पूर्व, वह सप्ताह भर पूर्व से ब्रह्मचर्य पूर्वक भूमिशयन, सात्विक भोजन और पूजा-पाठ में अपना समय व्यतीत करता है। सिर्फ यही नहीं, अग्नि कुडं में प्रवेश करने से पूर्व तक वह निरंतर जप-पूजा करता रहता है और अपने सामने रखे एक बड़े दीपक की लौ पर हथेली रखकर यह जांचता रहता है कि दीपक की लौ 'ठंडी' हुई या नहीं। वह उस समय स्वंय को भक्त प्रहलाद् के ही 'आवेश से आवेशित' मान लेता है, जब उसे दीपक की 'लौ' 'ठंडी' प्रतीत होने लगती है। वह तत्काल ही पास के कुंड (प्रहलाद कुंड) में 2-3 डुबकी लगाता है और फिर गीली धोती में ही दौड़ते हुए 2-1 मिनट में, उस विशाल अग्नि कुंड मे से पार निकल जाता है। हजारों की उपस्थिति में सैकड़ों वर्षो से यह होता आ रहा है।

फ्रेडरिक सामन ग्राऊज- प्रख्यात प्राच्यविद, मथुरा संग्रहालय के संस्थापक और 'द मथुरा-ए- डिस्ट्रिक्ट मैमोयर'' जैसी अनुपम कृति के लेखक ने भी अपनी पुस्तक में उपरोक्त घटना का, (लगभग 145 वर्ष पूर्व) आंखों देखा हाल लिखा है। इसे उन्होंने 'ब्रज की होली' के क्रम में ही लिखा है। उन्होंने लोकप्रचलित 'होलिका-हिरण्यकशिपु' का तो जिक्र किया ही है, 'फालैन' गांव के 'फालैन' शब्द की दिलचस्प व्याख्या करते हुए यह लिखा है कि यह 'फाड़ना' क्रियापद का ही संज्ञापद है। क्योंकि नरसिंह ने प्रहलाद के दुष्ट पिता हिरण्यकशिपु को 2 टुकड़ों में फाड़ दिया था। (पृष्ठ: 98/ मथुरा डिस्ट्रिक्ट मेमोयर)। नरसिंह पुराण में भी नरसिंहदेव द्वारा हिरण्यकशिपु के हृदय को 2 हिस्सों में ही अपने नखों द्वारा विदीर्ण किए जाने का उल्लेख है।.

उपरोक्त विवरण को यहां 'पूर्व पीठिका' शब्द से अभिव्यक्ति करने के पीछे हमारा एक मात्र उद्देश्य केवल इस तथ्य की ओर इंगित करना है कि ब्रजभूमि में

'नृसिंह पूजा' तथा 'नृसिंह नृत्य मेला' आज से सैंकड़ों वर्ष पूर्व भी थी, भले ही उसका रूप वर्तमान से इतर कुछ अन्य रहा हो। और यह भी, कि ग्राऊस की दृष्टि इस पर उस तरह से नहीं पड़ी हो।

अब हम मथुरा तथा ब्रज भूमि स्थित नृसिंह देव के पुराने तथा नए नरसिंह देव मंदिरों की चर्चा करेंगे।

मथुरा में नृसिंह देव का मानिक चौक मे 'एकाकी मंदिर' (अर्थात् जहां सिर्फ नृसिंह देव की ही उपासना होती है और उनकी एकल प्रतिमा वहां स्थापित और पूजित है) है। अन्यथा प्राय: अनेक प्राचीन विष्णु तथा कृष्ण मंदिरों में, नृसिंह देव का विग्रह दीवार पर खंभे पर अन्यत्र किसी न किसी रूप में उत्कीर्णित है। मथुरा के मानिक चौक का यह मंदिर ब्रज भूमि क्षेत्र का संभवत: सबसे प्राचीन मंदिर माना जाता है। नृसिंह देव की प्रतिमा अत्यंत भव्य और दिव्य है। समय समय पर यहां अनेक आयोजन होते रहते हैं।

हालिया मिली एक नवीन खोज में, मथुरा के गोवर्धन क्षेत्र के चकलेश्वर रोड पर एक पुरातन नृसिंह मंदिर मिला है। यद्यपि इस मंदिर के मुख्यद्वार पर फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी, संवत् 2044 (1997 ई.) में पं. कैलाश चंद्र मिश्र द्वारा निर्मित बताया गया है, परंतु लगता है, कि पुरातन मंदिर का ही नवीनीकरण किया गया है। वर्तमान मंदिर के प्रवेशद्वार पर दशावतारों का सुंदर दृश्यांकन उत्कीर्णित किया गया है।

इसके अलावा वृंदावन स्थित अठखंभा क्षेत्र का 'नृसिंह मंदिर' सर्वाधिक प्रसिद्ध और संभवत: सर्वाधिक प्राचीन मंदिर है। इस मंदिर में भी नरसिंह की बड़ी ही दिव्य एंव भव्य काले रंग की विशाल नृसिंह प्रतिमा है। इसी मंदिर से ही नृसिंह चतुर्दशी को वह भव्य युद्धक नाट्य कला का प्रदर्शन प्रारंभ होता है, जो इस सर्वेक्षण का मूल विषय है। इस रिपोर्ट में आगे इस मंदिर के इतिहास के विषय में अलग से विस्तृत विवरण दिया गया है।

ब्रज क्षेत्र में उपरोक्त अति प्रसिद्ध नृसिंह मंदिरों के अलावा, वृंदावन के केशीघाट स्थित नृसिंह मंदिर, गोदाबिहार स्थित मंदिर, मलूकपीठ के देवालय में स्थित नरसिंह, नंदगांव (छाता तहसील) स्थित नृसिंह मंदिर की भी हमें जानकारी मिली हैं। ये सभी वे नृसिंह मंदिर हैं, जो अपनी दिव्य और भव्य आभा के साथ वर्षो से पूजित हैं तथा यहां समय समय पर उत्सव आदि होते रहते हैं।

इन मंदिरों के अलावा हमें देश भर में पूजित लगभग तीन दर्जन एकाकी नरसिंह मंदिरों की भी एक सूची मिली है, जिनके चित्र तथा विवरण इंटरनेट पर मौजूद हैं। विषयांतर हो जाने तथा विस्तार भय से हम यहां उनका जानबूझकर विवरण नहीं दे रहे हैं, किंतु पाठकों की जानकारी के लिए तथा प्रसंगपूर्ति के लिए उनकी सूची हम इसी रिपोर्ट के परिशिष्ट में, इस के अंत में में अलग से दे रहे हैं।

जहां तक ब्रजभूमि में नृसिंह देव की पूजा आदि के पुरातात्विक साक्ष्य का संदर्भ है, हम निर्विवाद रूप से यह कह सकते हैं कि ब्रजक्षेत्र में नृसिंहोपासना, 5 वीं सदी में, विष्णु पूजा के साथ ही, प्रारंभ हो गई थी। यह गुप्तकाल की बात हैं। मथुरा संग्रहालय में इस समय भगवान विष्णु की 2 ऐसी मूर्तियां संग्रहीत हैं, जिनमें विष्णु के साथ ही, उनके शीर्ष स्थान पर

नृसिंह तथा वाराह की मूर्तियां हैं। इनमें 2525 संख्यक, महाविष्णु की मूर्ति है, जिसे पुराणों में 'महाविष्णु' कहा गया है। इन में विष्णु का मुख मानव का है। विष्णु का यही रूप खजुराहो के प्रसिद्ध वैष्णव मंदिर, लक्ष्मण मंदिर के गर्भग्रह में प्रतिष्ठित है। इसे 'जयाख्य संहिता' एंव 'हयशीर्ष पांचरात्र' में बैकुंठ रूप की संज्ञा दी गई है। दूसरी मूर्ति 2884 संख्यक 'विश्व रूप विष्णु मूर्ति' की है। इस दिव्य मूर्ति में विष्णु के वाम पार्श्व में स्कंध पर महावाराह मुख एंव दक्षिण पार्श्व में प्रसन्न मुद्रा में नृसिंह मुख निर्मित है। यह खंडित है, परंतु एकादश रूद्र, और अ. आष्टवसु तथा द्वादश आदित्यों से अंकित है। (गुप्त युगीन मथुरा, संपादक जितेंद्र कुमार, पृष्ठ - 130, ले. शशिबाला श्रीवास्तव

यहां यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि बेशक मथुरा में नरसिंह की कोई मूर्ति हमें 5 वीं सदी (गुप्तकाल) से पहले की नहीं मिलती, तथापि, विष्णु के एक अन्य अवतार 'वाराह' की प्रतिमा मथुरा में मिली है, जिसे कुषाण काल की माना जाता है। यह प्रतिमा चतुर्भुजी विष्णु स्वरूप में है। दोनों हाथ साधारण रूप से कमर पर टिके हैं और पिछले दोनों हाथों में रथारूड़ सूर्य और चंद्र अंकित हैं। जो उन के दिन और रात रूपी नेत्रों को धारण करने वाली उक्ति को सार्थक करते हैं। मुख के पास स्त्री रूप में पृथ्वी दिखाई देती है। यहां एक बात और ध्यान रखने की है कि असुरों द्वारा वेदों का 'हरण' किए जाने पर विष्णु ने 'हयग्रीव' या 'अश्वमुख' मानव रूप धारण कर उन्हें पुनः प्रात किया था। मथुरा से 'हयग्रीव' की भी एक प्रतिमा मिली है, जो इस समय भारत कला भवन, वाराणसी (सं. 4846) में है। अश्वमुख विष्णु भी रथारूढ़ हैं और महा-चक्र आदि से शोभित चतुर्भुजी रूप में हैं। कुषाण काल में नरसिंह की मूर्ति मथुरा से तो नहीं मिली, अलबत्ता दक्षिण भारत के कोंडा मोटू नामक स्थान से मिली है। यह भी स्वतंत्र मूर्ति नहीं है। अपितु पांच वृष्णिवीरों के साथ सिंह रूप में है। गर्दन के पास से उद्भूत हाथों में गदा और चक्र है। विष्णु का एक रूप 'बैकुंठ विष्णु' माना जाता है। शुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठा से जन्म लेने के कारण विष्णु बैंकुठ कहलाए। मान्यता है कि तीन असुर- एक ही देह में रहते थे। बैकुंठ रूप में उन्होंने, चार मुख वाले देवता का रूप धारण कर उनका विनाश किया था। इसी चतुर्मुखी विष्णु रूप में उनके सामने वाला मुख सौम्य राजा, अगल बगल वाले क्रमशः सिंह और वाराह तथा पीछे वाला कपिल या राक्षस होता है। ऐसी मूर्तियां गुप्तकाल में बनना शुरू हुई और मथुरा से इनका इतना व्यापक प्रचार हुआ कि ये राजस्थान, गुजरात और कश्मीर तक पहुंचीं। पाठक परिशिष्ट भाग में नृसिंह मंदिरों की सूची में देखेंगे कि वर्तमान में मथुरा और काशी के बाद, सर्वाधिक नृसिंह मंदिर (स्वतंत्र) राजस्थान में हैं। (देखें - ब्राह्मण देव मूर्तियां : नीलकंठ पुरूषोत्तम जोशी, ब्रज अंक, उत्तर-प्रदेश, सितंबर- 1984, पृष्ठ- 173)

'वाराह अवतार' का उल्लेख हमने यहां पर इसलिए भी किया है, क्योंकि समीक्ष्य युद्धनाट्य, जो इस सर्वेक्षण का मूल विषय है, में वाराह की भी महन् भूमिका होती है। दशावतार में वाराह भी, तृतीय अवतार माने गए हैं। वाराह पुराण नामक एक संपूर्ण पुराण भी 18 पुराणों में सूचीबद्ध है।

वाराह पुराण की विस्तृत चर्चा यहां आवश्यक नहीं, किंतु चूंकि संबंधित युद्धक नाट्य में जिस हिरण्यकशिपु के वध का नाट्याभिनय होता है, उसमें 'वाराह' के भी एक स्वरूप का दिग्दर्शन होता है, इसलिए प्रसंग पूर्ति के लिए उनका भी उल्लेख यहां किया गया। नरसिंह पुराण में भी दशावतार के क्रम में 'वाराह' का उल्लेख मिलता है। नाट्याभिनय में भी यद्यपि श्वेत वाराह तथा 'हरित वाराह' नामक 2 वाराहों का नाट्याभिनय होता है, उनके विषय में हम यथास्थान उसके रहस्य और कारणों की चर्चा करेंगे। नृसिंह पुराण में वाराह अवतार के स्वरूप का इस तरह उल्लेख किया गया है- ''तब उन्होंने वेदमय लंबा चौड़ा दिव्य वराह - शरीर धारण किया, चारों वेद ही चरण थे। यूप (पशु बंधन के लिए बना हुआ काष्ठ स्तंभ) ही दाड़ था और चिति (श्येनचित आदि) मुखामुख, मंडल स्थूल और छाती चौड़ी थी। भुजाएं बड़ी-बड़ी थी। अग्नि ही जिह्वा और स्रुक (स्रुवा) थूथन थी। चंद्रमा और सूर्य विशाल नेत्र थे। पूर्त (बाबली आदि खुदवाना) और इष्ट धर्म (यज्ञ-योग आदि) उनके कान थे। साम ही स्वर था। प्राग्वंश (पत्नी शाला या यजमान गृह) ही शरीर था। हवि ही नासिका था। कुश-दर्भ ही रोमावलियां थे। इस प्रकार उनका संपूर्ण शरीर ही वेद मय था। पवित्र वैदिक सूक्त ही उनके बड़े-बडे अयाल थे। नक्षत्र और तारे उनके हार थे। तथा प्रलयकालीन आवर्त (भंवरें) ही उनके लिए भूषण का काम दे' (नृसिंह पुराण। अध्याय 39 श्लोक- 10- 14) यहां विशेष उल्लेखनीय यह है कि जिस 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्य का वराह अवतारी विष्णु ने वध करके पृथ्वी को रसातल से उद्घाटित किया, वह हिरण्यकशिपु का ही सगा बड़ा भाई था और पूर्व में हिरण्यकशिपु से पूर्व, वही दैत्यराज भी था।

चूंकि 'नृसिंह' युद्धक नाट्याभिनय' में 'गणेश' भी एक प्रमुख पात्र है, और अपने अभिनयकाल में उनका 'नृत्य' भी एक विशेष आकर्षण का हेतु रहता है, इसलिए अति संक्षेप में यहां गणेश के विषय में भी सामान्य टिप्पणी पौराणिक तथा पुरातात्विक दृष्टि से की जा रही है।

वर्तमान में गणेश को 'आदि देव' माना जाता है और उनकी सर्वप्रथम पूजा की जाती है। गणेश या गणपति से संबंधित दर्जनों कथाएं और उपाख्यान हैं। 'गणेशपुराण' नाम से एक उपपुराण भी, नृसिंह पुराण की तरह उपलब्ध है। (वराह पुराण 18 पुराणों में अधिसूचित है, किंतु नृसिंह पुराण और गणेश पुराण को 'उपपुराण' माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन पुराणों की रचना, बहुत बाद में, हुई है, किंतु गणपति का पूजन, बहुत पहले से ही प्रारंभ हो गया था। महाराष्ट्र में गणपति उत्सव' तो अभी 19 वीं सदी से प्रारंभ हुआ है।)

मथुरा की मूर्तिकला के सुविख्यात विद्वान और आचार्य प्राच्यविद, श्री नीलकंठ पुरूषोत्तम जोशी लिखते हैं- ''भारतीय मूर्तिशास्त्र में गणपति का दर्शन कुषाणकाल में नहीं होता परंतु गणपति की प्रथम मूर्ति का निर्माण करने का श्रेय भी, कदाचित मथुरा के कलाकारों को ही जाता है। ईसवी सदी की तीसरी सदी के अंत या चौथी सदी के आरंभ की गणेश की तीन प्रतिमाएँ मथुरा संग्रहालय में विराजमान् हैं। (सं. 15/785, 15/792, तथा

15/1064)। द्विभुज लंबोदर सांप का जनेऊ पहने, हाथ में मोदक पात्र लिए दिखलाई पड़ते हैं। पद्मपुराण के अनुसार अमृत से निर्मित गणेश के मोदक का नाम महाबुद्धि है। (देखें / संदर्भ-वही)

नृसिंह युद्धक नाट्याभिनय में कुछ अन्य पौराणिक नारद आदि पात्र भी आते हैं, इस पुस्तक में उनकी चर्चा यथास्थान की गई है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचन से भी, हम डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा स्थापित इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'मेले' सिद्धांतत: प्राचीन देवी-देवताओं, जिन्हें हम साधारण भाषा में ''लोकदेवता'' और पारिभाषिक पुरातात्विक भाषा में ''यक्ष-यक्षिणी'' कह सकते हैं, का ही विकसित या ध्वंसित, विकृत अवशेष हैं। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि प्राचीन जैन पुरावशेषों में भी, जैन तीर्थकरों के साथ इन स्थानीय लोक देवताओं को भी मूर्तियों में उत्कीर्णित किया जाता था। उदाहरण के लिए, तीर्थकंर शांतिनाथ का यक्ष- 'गरूड़' है और जैन प्रतिमा शास्त्र के अनुसार, उसका मुख, 'वराह मुख है और आसन भी 'वराह' ही है। इसी तरह पार्श्वनाथ का यक्ष 'पार्श्वयक्ष' है, उसका वाहन कच्छप है और मुख भी 'गजमुख' है। हां, 'नरसिंह' जैसे किसी 'लोकदेवता' या 'यक्ष' का उल्लेख प्राचीन अभिलेखों में नहीं मिलता । हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वराह के साथ ही, हनुमान, नृसिंह, हयग्रीव, तथा गरूड़ को जोड़कर आजकल जो 'पंचमुखी हनुमान' की प्रतिमाओं की कल्पना की गई है- ये उसी का विकसित रूप है। नरसिंह की कुषाण कालीन प्रतिमा का पंच वृष्णिवीरों के रूप में दक्षिण भारत से मिलने से ऐसा लगता है कि नृसिंह पूजा का आरंभ दक्षिण भारत से ही कहीं से हुआ है। वीर पूजा, यक्ष पूजा का ही अंग है। ●

नृसिंह नृत्य नाट्यः मथुरा

'विष्णु' शब्द का शाब्दिक अर्थ है-'' वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः'' अर्थात् जो विश्व में व्याप्त है। अतः भागवत धर्म के आदि देव के रूप में 'विष्णु' (अथवा नारायण) की पूजा सर्वाधिक प्राचीन है। कालांतर में विष्णु के दशावतार पूज्य हुए। इनमें से भी नृसिंह तथा वराह का पूजन अत्यंत प्राचीन है। वराह पुराण (अध्याय 163/64) के अनुसार- ''अयोध्यापति राम ने रावण को मारकर वराह की मूर्ति को अयोध्या में स्थापित किया। जब शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध किया, तो इस मूर्ति को ले जाकर मथुरा में स्थापित किया।'' इस श्लोक से वराह पूजन की मथुरा में अत्यंत प्राचीनता स्वंय सिद्ध हो जाती है।

वर्तमान में मथुरा में मानिक चौक में ही नृसिंह तथा एक वाराह के 2 अलग-अलग मंदिर हैं। भूतेश्वर में भी एक मंदिर नृसिंह मंदिर है।वृंदावन में भी, छीपी गली में एक पुराना वराह मंदिर है तथा अठखंभा स्थित पुराने नृसिंह मंदिर के अलावा केशीघाट पर भी नृसिंह मंदिर है। मेले, जैसा कि हम पूर्व में कह आए हैं, हमारी प्राचीन पूजा परंपरा या सांस्कृतिक अभिव्यंजना के पारंपरिक स्रोत हैं। उस दृष्टि से आषाढ़ी दंगल, होली, चौपाई- हुरंगा, कंस मेला, नृसिंह लीला और कुशस्थली (कोसीकलां) का भरत मिलाप मेला, मथुरा के ऐतिहासिक पुरातन समारोह हैं। नृसिंह लीला इन सबसे अत्यंत पुरातन इसीलिए मालूम देती है, क्योंकि इसके आयोजन, प्रस्तुतिकरण में एक पारंपारिकता और देवालयी संस्कृति भी दिखाई देती है।

नृसिंह लीला में 'लीला' शब्द भक्तिपरक, या कि कहिए, आध्यात्मिक है। अनूठी बात यह है कि इस लीला में 'संवाद' नामक तत्व का सर्वथा अभाव है। संवाद (डायलॉग) रहित इस लीला में, इसके उलट ''नृत्य'' और विशिष्ट ताल-वाद्यों के ''संगीत'' की प्रधानता है। कोई अवतार-कथा जैसी विषयवस्तु भी नहीं है। किंतु इस युद्धक नृत्य, वीर-नृत्य या रौद्रनृत्य- कुछ भी कहिए का सर्वाधिक आकर्षण है-स्वरूप धारण, अर्थात् मुखौटा पहनना, अतिविशिष्ट वेश भूषा, नृत्यमुद्राएं और रसोद्रेकक संगीत।

इसलिए हम 'नृसिंह लीला' को एक 'विशिष्ट नृत्य नाट्य' कह सकते हैं, जो ठेठ ब्रजभूमि की देन है और 'रौद्ररस' का मूल भाव है। संदेश पारंपरिक है- असत्य पर सत्य की विजय या पापी का अंततोगत्वा नाश!

इस समय, यह नृत्यनाट्य ब्रजभूमि में मथुरा तथा वृदावन में प्रत्येक वर्ष वैसाख शुक्ला चतुर्दशी को नियमित किया जाता है। यह अति पुरातन है और प्रमाणित साक्ष्यों के आधार पर, जिसका कि हम आगे यथास्थान उल्लेख करेंगे, इसे विगत 200 वर्षो से तो नियमित रूप से प्रदर्शित किए जाने के पुष्ट प्रमाण हैं।

इस लीला के विषय में अन्य पक्षों की जानकारी देने से पूर्व यहां यह जान

लेना भी रोचक होगा कि इस 'लीला अभिनय' अर्थात् 'नृत्यनाट्य' में लगभग 18 केंद्रीय पात्र 'अभिनय' अथवा 'नृत्य' करते हैं, और इन के साथ लगभग इतने ही अन्य सहायक भी होते हैं, जो संगीत आदि के लिए विशिष्ट वाद्ययंत्र बजाने के अलावा, अन्य प्रकार से इस अभिनय को पूर्ण कराने में विशेष सहयोग करते हैं। इस लीला अभिनय या नृत्यनाट्य की सर्वोच्च विशेषता यह है कि इसमें कोई भी 'मंच' नहीं होता और यह गली, सड़क नुक्कड़, चौराहा- कहीं पर भी हो सकता है, और इसके दर्शक भी इसे मनोरंजन की बजाए धार्मिकता से देखते हैं और रससिक्त होते हैं। स्पष्ट: इसमें शत प्रतिशत सामान्य लोगों की सहभागिता रहती है।

ऊपर, जिन 16 पात्रों का उल्लेख किया गया है, इनमें से 3 पात्र वैदिक, 9 पौराणिक तथा 4 तांत्रिक क्षेत्र से लिए जाते हैं। ये सभी पात्र युद्धप्रिय, दुर्दात, दुर्दम्य और दुर्जेय पात्र हैं। वैदिक पात्रों में ब्रह्मा, इंद्र, और वृत्र हैं। पौराणिक पात्रों में गणेश, वाराह हिरण्याक्ष, वसुंधरा (पृथिवी या भूदेवी), हनुमान, अहिरावण, प्रहलाद हिरण्यकशिपु और नृसिंह हैं। तांत्रिक क्षेत्र के पात्रों में लांगुरा, रक्तबीज, महिषासुर ताड़क और दुर्गा हैं। अहिरावण के लिए स्थानीय पांरपरिक, पारिभाषिक शब्द 'अधकट्या' है। वृदावन में होने वाली लीला में, श्वेत वाराह, हरित वाराह और हिरण्याक्ष नामक 3 पात्र बढ़ जाते हैं। सारे पात्रों का अभिनय, अत्यंत बलिष्ठ, हष्टपुष्ट युवा पुरुष ही करते हैं।

मथुरा के प्रधान मंदिर, द्वारिकाधीश मंदिर में नृसिंह चतुर्दशी के दिन सायंकाल, मंदिर - प्रांगण में नृसिंह का स्वरूप (मुखौटा) धारण किए पात्र भगवान नृसिंह और हिरण्यकशिपु बने पात्र से युद्ध का अभिनय होता है। थोड़ी देर चलने वाले इस नृत्याभिनय को हम चाहें, तो इस नृत्यनाट्य का मंगलाचरण या शुभारंभ कह सकते हैं।

इसके बाद मथुरा के दूसरे सभी स्थानों में, अर्धरात्रि से थोड़ा पहले, पूर्व निर्धारित किए गये किसी एक स्थान पर यह लीला-दल, सर्वप्रथम महिषासुर बना एक पात्र अपना 'नृत्य' प्रस्तुत करता है। उसका मुखौटा काठ का बना होता है और आकृति महिष अर्थात् 'भैंसा' की होती हैं। वस्त्र काले गोटे से सजे होते हैं और वह घुटनों तक लंबा जांघिया (अंडर वियर) पहने होता है। कमर में कमरबंद होता है और वह एक विकराल खांडा (जो लकड़ी का बना होता है) लेकर उन्मत्त होकर नृत्य करता है। इस समय अन्य टीम के सदस्य एक विशिष्ट जुझारू 'मारू' नामक वाद्य बजाते हैं और उस ताल की संगत पर वह झूम झूमकर दानव-नृत्य की अनूठी भंगिमांए प्रस्तुत करता है। काफी देर तक (लगभग 10 मिनट) उसका यह रोमांचक नृत्य चलता है। इसके बाद, रक्तवसना दुर्गा के प्रतिरूप में एक अन्य पात्र प्रकट होता है। उसके एक हाथ में खप्पर तथा दूसरे हाथ में तलवार होती है। वह भी नृत्यमुद्रा में नानाविध नृत्यप्रदर्शन करती है। उसके नृत्य में महिषासुर से

युद्ध में 'द्वंद्व' की मुद्राएं ज्यादा होती है। वह बार-बार महिषासुर पर झपटती है। पैंतरे बदलती है और महिषासुर लगातार पीछे हटने का भाव प्रकट करता है। इस समय भी तीव्र वीर-रस युक्त संगीत, घण्टे आदि वाद्य बजते रहते हैं। इस प्रकार कई 'फेरे' (पारिभाषिक शब्द 'पौर') लेने के बाद, अंततः देवी, महिषासुर का 'वध' कर देती है। प्रतीकात्मक 'वध' हो जाने के बाद लीला थम जाती है, देवी की 'आरती' की जाती है और देवी भीड़ में समाहित हो जाती है। इसके फौरन बाद ही, भीड़ में से, 'अधकट्या' यानी अहिरावण 'प्रकट' होता है। यह भी एक विकराल मुखौटा लगाए होता है। इसके मुखौटे के आधा नीला तथा आधा पीला रंगा जाता है। इसके भी वस्त्र काले होते हैं तथा हाथ में लंबी तलवार या खांडा होता है। अहिरावण को 'माया' यानी 'छल युद्ध' का प्रतिनिधि माना जाता है।

अहिरावण की नृत्य मुद्राएं और भंगिमाओं में 'माया युद्ध' का वैशिष्ट्य होता है। वह लंबी-लंबी 'कुदान' लेता है। अर्थात्
'लंबी कूद' का प्रदर्शन उसकी विशिष्ट पहचान होती है। उसकी आक्रामकता में भी लंबी 'झपट' होती है और चाल 'तिरछी' होती है। रात्रि का अंधकार और सामान्य प्रकाश में उसके नृत्य के 'पैंतरे' बेहद आतंककारी होते हैं।

इसी समय, रौद्र रस के तीव्र सांगीतीक नाद के मध्य अहिरावण से द्वंद्व युद्ध के लिए हनुमान प्रकट होते हैं। हनुमान बनने वाला अभिनेता का शारीरिक रूप से अत्यंत पुष्ट और बलिष्ठ होना आवश्यक होता है। यह पात्र भी हनुमान का मुखौटा धारण किये होता है। और हनुमान अपनी भारी भरकम गदा घुमाते हुए नृत्य करते हैं। हनुमान का यह नृत्य वीर-रस से ओत-प्रोत होता है और वे अपने लाल-लंगोट (घुटनों तक) तथा लंबीपूंछ से जन मन में खासा हास्यबोध भी उत्पन्न करते हैं। दोनों में तुमुल संघर्ष होता है और बाद में हनुमान के पदाघात भाव से ही अहिरावण वध की लीला संपन्न हो जाती है। हनुमान के स्थल से हटते ही, वहां तत्काल लाल मुखौटा धारण किए राक्षस रक्तबीज, तथा बिना मुखौटा के गहरे लाल रंग से चेहरा पोते, भैरव यानी 'लांगुरा' उपस्थित होते हैं। रक्तबीज का मुखौटा भी खासा भयावह और रौद्र होता है।, इस रक्तबीज दैत्य के दोनों हाथों में लंबे विकराल खड्ग होते हैं जो मध्यम प्रकाश में चमकते है। उधर भैरव के हाथों में भी, एक तलवार और खप्पर होते हैं। कभी कभी भैरव के खप्पर में अग्नि ज्वाला होती है। दोनों की वेशभूषा भी अति नाटकीय होती है। दैत्य रक्तबीज दैत्य की राक्षसी वेशभूषा होती है और भैरव गेरूए रंग का घुटनों तक लंबा लंगोट पहने होता है। ऊपरी बदन नग्न होता है। और लाल गेरू रंग से पुता होता है। उसका बलिष्ठ शरीर ही रक्तबीज जैसे दैत्य को परास्त करने का प्रतीक होता है। इस नाट्याभिनय में रक्तबीज, बार-बार अपने हाथों से रक्त छिड़ने का नाट्य करता है- नृत्य करते-करते, और भैरव, रक्तबीज के फेंके रक्त-विंदुओं को बार बार पी जाने का अभिनय करता है। काफी देर तक यह प्रसंग चलता है

और अंत में वैदिक कथा- इंद्र-वृत्रासुर-युद्ध का रोमांचक दृष्य दिखाया जाता है। वृत्रासुर का नृत्याभिनय और इंद्र द्वारा वृत्रासुर को वज्र द्वारा मार डालने का अभिनय नृत्य द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

इंद्र-वृत्रासुर लीला का प्रसंग होते-होते काफी रात हो चुकी होती है- इसलिए देर रात हिरण्याक्ष और वाराह का रंगक्षेत्र में नृत्य मुद्राओं में प्राकट्य होता है। इस लीला में वाराह का मुखौटा बेहद भयावह होता है। वाराह का मुखौटा शूकर का होता है। और काफी लंबा होता है। स्वंय वाराह, चूंकि विष्णु के अवतारी होते हैं, इसलिए उनकी वेश भूषा भी बहुत भव्य होती है। परंपरा से वाराह के श्वेत, नील और हरित-तीन वर्ण (रंग) माने जाते है। और भिन्न-लीला मंडलियां इनके वर्ण का निर्धारण अपनी पंसद से करती हैं। वैसे पांरपरिक रूप से श्वेत वाराह को शांत और हरित वाराह को अधिक 'क्रोधी' माना जाता है। वाराह का स्वरूप आभूषणों से युक्त होता है, और वह अपने हाथों, पैरों से भूमि को विदीर्ण करने वाली नाट्याभिनय से संयुक्त होता हैं। वाराह का नृत्य काफी जटिल और थकाने वाला, परिश्रम साध्य होता है। मुखौटा भी वजनी होता है और उसमें श्वांस-प्रश्वांस की स्थिति भी जटिल होती है, इसलिए इस पात्र के लिए ऐसे अभिनेता का चुनाव किया जाता है, जिसमें प्रबल दमखम (स्टेमिना) हो। लंबे, भारी मुखौटे को संभालते हुए, भूमि में झुककर पृथ्वी को विदारित करने का नाट्याभिनय, सांकेतिक तौर पर करना- बेहद कौशलपूर्ण होता है। इसके लिए उसे लंबी साधना और रिहर्सल भी करना होती हैं। हिरण्याक्ष दैत्य के वध की लीला के पश्चात् देवी वसुधंरा (अर्थात् माता पृथिवी या भूदेवी) वाराह की आरती करती है। इस प्रकार रात्रि के दूसरे प्रहर तक का कार्यक्रम संपन्न हो जाता है। और सभी कलाकर और श्रद्धालु भी थोड़ी देर के लिए विश्राम में चले जाते हैं क्योंकि अंतिम रोमांचक 'नृसिंहलीला' का होना शेष है। अत: उसकी तैयारी शुरू हो जाती है।

दूसरे दिन,प्रात: काल-सुबह, लगभग चार बजे, से ही भक्त समुदाय तथा लीला-प्रेमी लोग लीला-स्थल (जो प्राय: निर्धारित होता है।) के आसपास एकत्र हो जाते हैं। सर्वप्रथम गणपति (गणेश) का एक मांगलिक नृत्य होता है। गणपति अभिनेता भी मुखौटा धारण करता है और प्राय: तोंदियल किस्म के व्यक्ति को (या बालक को) यह भूमिका दी जाती हैं। इस नृत्य में गणपति स्वरूप आयुध के रूप में त्रिशूल या अंकुश धारण करते हैं। गणपति नृत्य के लिए प्राय: किशोर उम्र के किसी स्वस्थ ब्राह्मण बालक को चुना जाता है।

गणेश के मंगलाचारी नृत्य के बाद, चतुर्मुखी ब्रह्मा, हंस के एक खोल (अनुकृति) में बैठकर आते हैं। हिरण्यकशिपु नामक राक्षस उनके चरण छूता है और वे आशीर्वाद (या वरदान) का अभिनय करके चले जाते हैं। हिरण्यकशिपु

की तपस्या और ब्रह्मा के वरदान की यह कथा दिखाई जाने के लिए यहाँ कोई नृत्य नहीं होता। इसके फौरन बाद ही रुद्र घूर्जटी के वेश में शिव (महादेव) आते हैं। इस लीला मंचन में शिव के मादक नयन, सर्पों के आभूषण, उनकी जटाएं, माथे पर चंद्रमा, और वृषारूढ़ खोल (कागज और अन्य चीजों से बनी अनुकृति) बेहद आकर्षक होती हैं। तभी ताड़कासुर, महादेव से द्वंद्व युद्ध करने के लिए रंगस्थल पर अचानक प्रकट होता है। यहां रोचक तथ्य यह है कि यद्यपि ताड़क एक पौराणिक पात्र (असुर) है, किंतु रामायण में (रामचरितमानस में) 'ताडका' नामक एक राक्षसी का भी उल्लेख है।, अत: यह पात्र 'नर-नारी' के मिश्रित-भावों को एक साथ नाट्यारोपित करता है। उसके सिर पर मुकुट, जटाजूट तथ लंबी लटें भी होती हैं। उसके मुखौटे में भयानक राक्षसी मुद्रा होती है,
किंतु उसे 'राक्षसी' प्रदर्शित करने के लिए कभी-कभी उसकी नाक में नथुनी भी डाल दी जाती है। वह लहंगानुमा वस्त्र कटि - प्रदेश में धारण करता ही है-जो प्राय: सभी दैत्य पात्रों को पहनाए जाते हैं। इस 'ताड़क' का आरंभिक नृत्य हाथों में लंबी तलवारें (खड्ग) लेकर होता है, किंतु थोड़ी देर बाद ही वह 'आवेशित' मुद्रा में मायावी नृत्य करने लगता है। कभी वह कंपयमान होता है, तो कभी तेजी से सिर हिलाने लगता है, कभी झपटमारी ढंग से दौड़ता है तो कभी अपनी देह के पिछले हिस्से को झुलाने-झुमाने और मर्दन करने की विचित्र हरकतें करने लगता है। उत्पीड़न और उत्पीड़ित-दोनों भाव मुद्रांए वह तीव्रता से प्रदर्शित करता है। अतंत: वह महादेव के सम्मुख प्राणघात पाता है और रंगस्थल से विलुप्त हो जाता है।

इस नाट्य के बाद ही, अंत में नृसिंह देव प्रकट होते हैं। नृसिंहदेव के प्राकट्य की लीला को प्रदर्शित करने के लिए रंग-स्थल के पास कोई ऊंचा स्थान, चबूतरा या मेज इत्यादि रखकर एक मंच जैसा बनाया जाता है। और उस पर कागज से रंग-रंजित एक खंभा बनाया जाता है। इसे प्राय: बांस की सामान्य खपच्ची पर रंग-बिरंगे कागजों से मढ़कर (जैसे रावण का पुतला बनाते हैं) बनाया जाता है। नृसिंह देवता उसे विदीर्ण कर अपने पूर्ण रौद्र में, वहीं से प्रकट होते हैं।

नृसिंह का मुखौटा बेहद मूल्यवान और परिश्रम से अनेक दीप्तिमान कला विधियों से बनाया जाता है। पूरा चेहरा भयावह भावों को प्रदर्शित करने वाला होता है। विशाल रक्तरंजित आंखें, लपलपाती लाल जीभ, मुखौटे की डरावनी मूछें, विस्फारित मुख, मुखौटे की विशेषताएं होती हैं। इसके अलावा नृसिंह के वस्त्राभरण में भी दिव्यता के दर्शन होते है। व्याघ्र चर्म के आकार के वस्त्र वह पहने होते हैं। सिर पर सफेद केशों का विशाल केश कलाप चंवरों से तैयार किया जाता है। उनके हाथों में कोई भी शस्त्र नहीं होता। किंतु

उनकी चाल, दहाड़, पैंतरे, झिझकियां और नृत्यजैसी मुद्राएं एक ही साथ भयानक, रौद्र और अद्‌भुत रस का संचार करती हैं। नृसिंह का गतिमान नृत्य बेहद मुग्ध-कारी होता है। हिरण्यकशिपु नामक दैत्य के वध और प्रहलाद जैसे बालक के प्रति वात्सल्य भाव के प्राकट्य के साथ यह लीला समाप्त होती है। लीला समाप्ति के बाद, नृसिंह की आरती होती है और लोग अपने छोटे बच्चों को नृसिंह के स्वरूप के सामने लाते है। या गोद में दे देते हैं, ताकि वे अभय भाव से भर जाएं।

यह मथुरा में होने वाली नृसिंह लीला का संक्षिप्त विवरण है। वृंदावन की लीला में, और मथुरा की लीला में अति सामान्य सा ही भेद है, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

खुले मंच का नृत्याभिनय होने के कारण, इस लीला के वाद्‌यवादक गण, मंच से आगे जहां तक अभिनयकर्ता जाता, दौड़ता या अभिनय करता है, वादक जन साथ साथ चलते हैं। प्रायः दो ऊंचे चबूतरों के बीच, खुले मैदान को रणक्षेत्र (या नृत्य क्षेत्र) माना जाता है। वाद्‌य उपकरणों में भर्रा, जो एक प्रकार की बड़े आंकार की झांझ होती है, बजाया जाता है। इसके अलावा घड़ियाल, झालर, मृदंग तथा तीव्र ध्वनि वाले कांसे के घण्टे बजाए जाते हैं। नृसिंह नृत्य के वाद्‌य वादन के राग को 'मारू' कहा जाता है। इसे जुझाऊ रंग भी कहते हैं। इसकी ध्वनियों में युद्धोन्माद की प्रवृतियां हैं। लय पर अभिनेताओं और दर्शकों की भी भुजाएं फड़कने लगती हैं। राग के बोल हैं -

जै नृसिंह जै नृसिंह जै जै जै जै। ध्रकृतिं ध्रकृतिं धम। मारू बाजै तीन दम।

इसकी स्थाई और द्रुत गतियां भी हैं जो यथा समय प्रयुक्त होती हैं। इस लीला के मुखौटों के निर्माण, सरंचना, तथ लीला की पारंपरिक गुरु-परंपरा

का भी अपना एक अलग इतिहास है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। ●

नृसिंह नृत्य नाट्यः वृंदावन

वृंदावन की 'नरसिंह नृत्य लीला' का अपना वैशिष्ट्य और इतिहास है। इस के लिए 'लीला' शब्द का पारिभाषिक तौर पर इसलिए प्रयोग किया है, क्योंकि यह सिद्धांतत: लोकनृत्य है, और चूंकि इसमें 'नृत्त' का कोई शास्त्रीय पक्ष नहीं है, इसलिए अपनी 'नाटकीयता', जिसका मूल तत्व 'मुखौटे' का प्रयोग है, के कारण इसे 'नृत्य' कहा गया। पुराण कथा से इसका संबंध है, इसलिए इसे 'लीला' भी कहा जाता है। 'लीला' शब्द से इसमें सांस्कृतिक और धार्मिक सुगंध भी मिलती है।

वृंदावन को राधा और कृष्ण की दिव्य लीला स्थली माना जाता है और सहृदय भक्तकवियों ने उनकी 'नित्यरासस्थली' के रूप में इस दिव्यभूमि का चिंतन किया है। सोलह कलाओं से परिपूर्ण श्री कृष्ण को न केवल 'परमब्रह्म' माना गया है, बल्कि पौराणिक आख्यानों में 'श्री राधा' को उनकी 'आल्हादिनी शक्ति' भी कहा गया है। ऐसी रसपगी लीला भूमि में, श्रीकृष्ण के ही, जो स्वंय विष्णुस्वरूप हैं, उनके समस्त अवतारों की जयंतियां भी बड़े ही धूमधाम से सानंद मनाने का प्रचलन है। चूकि भगवान कृष्ण महान् नृत्याचार्य हैं, इसलिए वृंदवन की भूमि भी नृत्योत्सवों से पगी है। 'नृत्य' यहां भक्ति का ही एक रूवरूप है, बल्कि आध्यात्मिक संदर्भों में तो यहां तक कहा गया है कि यहां 'भक्ति ही स्वंय नृत्य करती है- 'धन्यं वृंदावनं भक्ति नृर्त्यायत्र च'' (भागवत)। यही नहीं, प्रभुभक्ति की चरमस्थिति के लिए कहा गया-'' भक्ति-भक्त-भगवंत-गुरु-चतुर्नाम वपु एक।' अर्थात् 'भक्तितत्व' ऐसी है, कि भक्ति भक्त, भगवान और गुरु-चारों एक ही स्वरूप में निलय हो जाते हैं। महाभाव की यह दशा ही, आध्यात्मिक अर्थों में 'नित्यरास' से आगे बढ़कर 'महारास' में परिणत हो जाती है। अत: यहां 'नृत्य' भी 'भक्ति' का ही एक अनन्य स्वरूप है।

वृंदावन की 'नरसिंह-लीला' (नृत्य नाट्य) का इतिहास न्यूनतम 200 वर्ष पुराना तो है ही। मथुरा के इतिहास की सर्वाधिक, आधुनिक प्रामाणिक पुस्तक माने जाने वाली 'मथुरा डिस्ट्रिक्ट मेमोयर' (लेखक, प्रख्यात प्राच्यविद् फ्रेडरिक सामन ग्राउस) (रचना काल:1874) में भी ग्राऊस महोदय ने वृंदावन के उत्सवों की सूची में 'नृसिंह लीला' का उल्लेख किया है। इस के अलावा 17 वीं सदी के उत्तरार्ध में, शाहजहां के शासन काल में, बीकानेर (राजस्थान) से आए एक तीर्थयात्री ने भी वृंदावन में नृसिंह मन्दिर का वर्णन अपने यात्रा-वर्णन में किया है। यह पुस्तक राजस्थानी गद्य मे लिखी हुई है और अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में सरंक्षित है। एक अन्य पुष्ट प्रमाण,

रीतिकालीन काव्य-परंपरा के अंतिम समय के रससिद्ध कवि गोपाल राय द्वारा रचित 'वृंदावन धामानुरागावली'' (रचना काल संवत् 1900 अर्थात् सन् 1843) में, बीच बाजार में नृसिंह लीला का वर्णन कुछ इस अंदाज में किया है-

जाते उरे बजाजौ तामै, बहु बजाज वहां बैठे।
लेई नहीं, तोऊ दिखराबै, नहिं काहूं सौं ऐंठे।
तहं नृसिंह लीला को उत्सव बरसै, इक दिन होई।

आज की तिथि-2019 के हिसाब से, यह 166 वर्ष पुरानी पुस्तक है और अभी तक अप्रकाशित है और ब्रज संस्कृति संस्थान, गोदाविहार वृदावन (मथुरा) पांडुलिपि के रूप में मौजूद है। इसे 200 वर्ष पुराने वृंदावन का प्रामाणिक, जीवंत और अत्यंत रोचक लोकरंजक भाषा में लिखा गया इतिहास माना जाता है। अस्तु।

ब्रजभाषा के भारतेंदुयुग से पूर्वकालीन कवियों में से एक अन्य रससिद्ध कवि हुए हैं- कविवर दयानिधि। इनके साहित्य व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध करने वालीं डा० उमारानी बंसल ने अपने ग्रंथ 'कविवर दयानिधि और उनका काव्य' में इनके द्वारा चरित्र 'नृसिंह चरित्र' का उल्लेख किया है। वह लिखती हैं- ''नृसिंह चरित्र का आंतर संबंध निष्ठावान भक्ति भाव से है। भक्ति में 'प्रहलाद चरित्र की एक खासी परंपरा परिलक्षित होती है। रैवासा महापीठ के आचार्य और रामभक्ति में मधुरोपासना के प्रवर्तक स्वामी अग्रदास 'अग्रअलि' ने भी प्रहलाद चरित्र लिखा था। हस्तलिखित सूची ग्रथों में प्रहलाद चरित्र परंपरा को अनेक गद्य पद्य रचनाओं के उल्लेख मिले हैं। गोस्वामी दयानिधि के 'नृसिंह चरित्र' को भी प्रहलाद काव्य स्वरूप मानना चाहिए।

आगे पृष्ठ 208-209 पर वह लिखती हैं- 'ऐसा लगता है कि (वृंदावन के) श्री राधा बल्लभ जी मंदिर के परिपार्श्व में स्थित 'सिद्ध नृसिंह जी' के मंदिर में कभी गोस्वामी दयालाल दयानिधि ने इन्हे 'नृसिंह जयंती' के अवसर पर सुनाया हो। प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति में उपलब्ध, यह छंद बड़ी ही काव्योचित भाषा में निवद्ध हुआ है-

तापत रहौं जु कौलौं दारिग दवागि ताप,
ढापत हू भर्म उघरैगौ जिय धारोगे।।
कांपत है चित, नित, नित जित तित दुषित कै,
धापत न तन, अनते हु सो विचारोगे।।
मापत पिता सो गुरु 'दयानिधि के तो तुम'
छापत न छित भो छिपी न लीन पारोगे।
नापत कहा ही नरहरि पुन्यपाप मेरे,
ना पत रहेगी जोन आपत निवारोगे।

जोधपुर पांडुलिपि। छंद सं. 82)

इसी क्रम में एक अन्य ग्रंथ ''दंपति वाक्य विलास'' (रचना काल, विक्रम संवत 1885 (ई० सन् 1825) में भास-प्रबंध के अंतर्गत बैसाख मास की नृसिंह चतुर्दशी का उल्लेख मिलता है। (जानकी जनम अखतीज नरसिंह व्रत, करि सब नर नारि रहे तरू साखते) अत: उपरोक्त संदर्भो के आलोक में, हमें अर्वाचीन प्रमाण 1953 में ब्रज साहित्य मंडल द्वारा, श्रद्धेय आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा सपांदित, 'पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ' में भी, जो ब्रज-उत्सवों की सूची मिलती है, उसमें भी वृंदावन के नरसिंह मेले के धूमधाम से होने का उल्लेख पृष्ठ 1047, पर मिलता है।

अत: वर्तमान में यह एक आनुष्ठानिक लोकपर्व है, जो बैसाख मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी और उससे अगले दिन, यानी पूर्णिमा को मनाया जाता है। यहां पर यह मंचन खंभे को फाड़कर नृसिंह के अवतारी स्वरूप के प्राकट्य से होती है। यद्यपि इससे पूर्व हिरण्यकश्यपु और उसकी बहन ताड़का (या होलिका) अपना उत्पात और उपद्रव मचाते हुए गलियों और बाजारों में घूमते हैं। यह एक प्रकार से नृसिंह लीला मंचित होने की पूर्व सूचना भी होती है। कुछ स्थानों पर ये सूचना नारद बने एक स्वरूप और उसके साथ बाल-गोपालों, किशोरों के एक झुंड द्वारा भी विजयघंट (एक प्रकार का मंदिर में बजने वाला घंटा) बजाते हुए की जाती है। चूंकि यह लीला वृंदावन में कई स्थानों पर होती है, इसलिए इस दिन कुछ स्थानों पर गणेश, हनुमान और मकरध्वत अपना स्वरूप (मुखौटा) धारण कर गली-बाजारों में भ्रमण करते हैं। वृंदावन की लीला कुछ निश्चित स्थानों पर केंद्रीय पात्रों-नृसिंह, भक्त प्रहलाद, श्वेत वाराह, हरितवाराह और हिरण्यकशिपु द्वारा अभिनीत की जाती है। हिरण्यकशिपु के वध के पश्चात् नृसिंह और वराह अवतार के मुखौटाधारी स्वरूप वृंदावन की गली एंव बाजारों में निरंतर नृत्य करते हुए भ्रमण करते हैं। इस टीम के साथ एक छोटा सा जन समूह झालर, घंटा (जिसे विजय घंट कहते हैं) बजाते हुए आगे-आगे चलते हैं। इसकी ताल-लय की ध्वनि ऐ जयघोष रूप में इस प्रकार गुंजाय मान होती रहती है-

देर तक एक-एक 'चौक' (या नुक्कड़) पर होती है।

'छिछिर की छम-छम-छम।

जय-जय-श्री नृसिंह देव की।।

पुराने समय में, लगभग 60 वर्षो पूर्व तक, नृसिंह अवतारी का स्वरूप'' अंगूठे वाली खंड़ाऊ'' पहन कर 'नृत्य' करता था' जिसमें कड़ी साधना की जरूरत रहती थी। इस नृत्य में एक मुद्रा 'चक्रदंड' की होती है, जिसमें नर्तक नृत्य करते समय एक पांव पर ही पूरा घूम जाता था और फिर बैठकर व्यायाम वाला 'दंड' लगाता था। 'बैठक' भी लगाई जाती थी। इस तरह यह नृत्य-नाट्य और युद्धकला (मार्शल आर्ट) का सम्मिश्रण हो जाता है और अद्भुत प्रभाव दर्शकों पर डालता है। नृसिंह की नृत्य मुद्राओं में ताल, लय और पैंतरे भी हैं। अभी भी नृसिंह

नृत्य मुद्रा में 'चाल' को ''ढाई चाल'' और ''साढे तीन चाल'' की परंपरा है। यानी नर्तक दो कदम चलने के बाद एक दम स
घूम जाता है। और कई बार तीन कदम चलने के बाद ! यह नृत्य लीला काफी-काफी बृजवासियों, विशेषकर वृंदावन वासियों में एक मान्यता और आस्था यह भी है कि यदि नृसिंह स्वरूपधारी भगवान उनके 'घर' पर पधारेंगे, तो हमारा 'मंगल' होगा, और मनोकामनाएं भी पूर्ण होंगी। इसी कारण नृसिंह लीला के ये स्वरूप लोगों के आग्रह पर उनके घरों में भी जाते हैं, जहां उनकी आरती की जाती है। और कुछ कुछ 'भेंट' भी दी जाती है।

इस अवसर पर छोटे बच्चों की मातांए अपने बच्चों को नृसिंह बने स्वरूप की गोद में रखती हैं, ताकि वे 'अभय' हो जाएं। यह भी एक लोक मान्यता है कि नृसिंह छोटे बच्चों को गोद में लेकर नृत्य करते हैं, तो वे बच्चे अभय, निर्भीक, दीर्घायु, भक्त और बुद्धिमान भी होते है। घर में नरसिंह स्वरूप का आगमन बेहद शुभ और मंगलमय माना जाता है।

अब हम इस विषय में, इसके कलापक्ष की चर्चा करेंगे। सबसे पहले हम मुखौटों के निर्माण, तदोपरांत उसको 'धारण' करने की विशिष्ट विधि की विस्तृत चर्चा करेंगे।

मुखौटों का निर्माण भारतीय पुरातन लोक कला परंपरा है, किंतु समय की बदलती परिस्थितियों के कारण अब इसकी निर्माण कला-की गति बहुत धीमी हो गई है। अभी 100 वर्ष पूर्व तक, (सिनेमा के उदय से पूर्व) लोक रंजन के क्षेत्र में, नाटक, स्वांग, नौटंकी और विशेषकर रामलीलाओं का बहुत जोर था। विशेषकर ब्रज भूमि, मथुरा की रामलीला मंडलियों का अखिल भारतीय ख्याति थी। रामलीला के तमाम पात्रों के लिए विभिन्न प्रकार कं मुखौटे और उनके मेकअप तथा अन्य उपादानों के लिए तमाम चीजों की आवश्यकता पड़ती थी। जैसे- हनुमान, अंगद, नल-नील, जांबवंत, राक्षस, रावण आदि के लिए मुखौटे। इसके
अलावा विभिन्न पात्रों के लिए जटाजूट, मालाएं, ऋषि-मुनियों के लिए मृगछालाएं, दाढ़ी-मूछें, तथा लीला के विभिन्न दृष्यों के लिए पृष्ठभूमि के नाना प्रकार के पर्दे-जैसे महल, जंगल, भवन, कुटिया आदि। यह एक बड़ी 'काटेज इंडस्ट्री' (कुटीर उद्योग) थी और निसंदेह, इसमें मथुरा का बड़ी कंपनी, 'सुख संचारक कंपनी', जिसको हम 100 वर्ष पुराना मथुरा का 'मॉल' या 'बड़ा शोरूम' कह सकते हैं- में ये सारा सामान एक ही स्थान पर मिलता बिकता था। इस पुस्तक के लेखक के पास 1913 की, उपरोक्त कंपनी की एक प्रचार-पुस्तिका सुरक्षितहै, जिसे तत्कालीन समय में 'जंत्री कहा जाता था और जिसे ग्राहकों को बतौर प्रचार-सामग्री मुफ्त में दिया जाता था। दिन-तिथि- महीनों के कैलेंडर के बाद, बाद के लगभग 20-24 पृष्ठों में 'कंपनी' में उपलब्ध लगभग सभी सामानों की

सचित्र सूची, मूल्यसहित छापी जाती थी। हमारे पास जो 'जंत्री' उपलब्ध है, उसमें उपरोक्त –'मुखौटों' की कीमत सहित उल्लेख है।

इसी से हम आसानी से समझ सकते हैं कि अभी 100 वर्ष पहले तक उपरोक्त मुखौटों का निर्माण, (तथा अन्य सामग्रियों का निर्माण) ब्रजभूमि में ठीक उसी प्रकार से होता था, जैसे आज भगवत मूर्तियों का तथा, श्रृंगार सामग्री तथा पोशाक सामग्री का उत्पादन मथुरा में होता है।

मुखौटों का निर्माण कागज की लुगदी और चिकनी, मुलतानी मिट्टी के मिश्रण से किया जाता है। सब से पहले पुराने अखबार या साफ सघरे कागजों को पानी में, एक बड़ी मिट्टी की नांद में डालकर तीन चार दिनों के लिए भिगोने के लिए रख छोड़ दिया जाता हे। शुकदेव शर्मा, जो काफी लंबे अर्से से इन मुखौटों का निर्माण वृंदावन में करते हैं, ने इसकी निर्माण विधि हमें कुछ इस तरह से बताई–

पहले हम लुगदी को बनाने के लिए कागज को भिगोते थे। कई बार एक एक सप्ताह तक कागज भिगोने के बाद भी, कागज की आवश्यकतानुसार 'मुलायम' लुगदी नहीं' बन पाती थी। इसलिए एक बार हमारे घर की ही एक छोटी बिटिया ने जादुई परामर्श दिया कि क्यों न कागज को पानी में उबाल लिया जाए। हमने प्रयोग किया तो, तो परिणाम अच्छा मिला। समय भी बचा। बदरहाल कागज की लुगदी और उसमें सही अनुपात में मुलतानी मिट्टी का मिश्रण मिलाने से पहले, 'सांचा' बनाना पड़ता है। यह भी मिट्टी से ही बनता है और मुखौटे के सारे अवयावों के उभार, उठान, गहराई आदि का ध्यान रखकर, चाकू, कील या तमाम अन्य लकड़ी या लोहे की नुकीली–चपटी चीजों से 'सांचा' बनाना पड़ता है। सांचा बनाने में भी काफी समय लगता है। फिर उसे कड़ी धूप में सुखाना पड़ता है और सूख जाने के बाद रेगमाल आदि रगड़ कर उसे चिकना किया जाता है, ताकि मुखौटा ठीक से आकार ले सकें।

इसके बाद, मुखौटा बनाने से पहले एक साफ स्वच्छ और पतले कागज से सांचे को अच्छी तरह 'मढ़' दिया जाता है, जिससे, लुगदी और मिट्टी के मिश्रण का लेप चढ़ाने के बाद सूखने पर वह सांचे से चिपक न जाए। और आसानी से, सूख जाने पर, निकल आए। कुछ लोग इसके लिए मोमजामा का भी प्रयोग करते है। अजकल कुछ लोगों ने थर्मोकोल की पतली, मुलायम शीट का भी प्रयोग करना शुरू किया है। लेकिन अखबार और पतला कपड़ा सबसे बेहतर होता है।

इसके बाद, अत्यंत कौशल से, मुखौटे के 'आकार' को ध्यान में रखकर आधा इंच से एक इंच मोटी तक, लुगदी तथा मुल्तानी मिट्टी के मिश्रण का लेप पूरे सांचे पर इस तरह चढ़ाया जाता है कि सारे अंग प्रत्यंग के अवयव, उसमें उभर आएं। इस लेपन में भी खासी मेहनत और कौशल के जरूरत रहती है। इसके बाद मुखौटे को पुनः सुखाया जाता है। अच्छी तरह सूख जाने पर इसे सांचे से पुनः बड़ी

बारीकी और कुशलता से अलग किया जाता है और एक बार पुनः संपूर्ण मुखौटे की रेगमाल आदि से घिसाई करके उसे 'चिकना' किया जाता है। मुखौटे को सांचे से अलग करते समय कई बार कुछ चीजें टूट या चटख जाती है।उनकी तत्काल रिपेयरिंग भी करनी पड़ती है, जैसे खास तौर पर नृसिंह और वराह के दांतों' पर तो दोबारा मेहनत करना ही पड़ती है। नेत्र खोखले बनाए जाते हैं, उन्हें भी ठीक करना होता है।

घिसाई के बाद, असली काम होता है, मुखौटे का श्रृंगार यानी उसको 'पेंट' करना। यह श्रम साध्य तो है ही, बेहद कलात्मक कार्य भी है और 'चित्रकला' का ज्ञान होना भी बहुत जरूरी है। पहली बार सफेद रंग से प्राइमरी कोटिंग की जाती है। किसी जमाने में मिट्टी के रंगों को घोलकर चेहरे को चित्रित किया जाता होगा, अब तो उत्कृष्ट ऑयल पेंट' का इस्तेमाल होता है और मुखौटों की भाव-भंगिमा के आधार पर आंखें, भौं, दांत, और अन्य स्थान पर रंग पेंट किया जाता है। पेंट के सूखने में भी 3-4 दिन लग जाते हैं और सूख जाने के बाद भी, आवश्यकतानुसार दोबारा पेंट भी करना पड़ता है। मौंहें तथा आंखें सबसे बाद में पेंट की जाती हैं।

नृसिंह का मुखौटा, सिंहाकृति होने के कारण पीला, तथा वराह के लिए श्वेत तथा हरे रंग का विशेषतः प्रयोग होता है। विभिन्न

राक्षस, काली, हनुमान, भैरव, भूत-प्रेत के मुखौटों की भी यही प्रक्रिया है। मोटे तौर पर एक सामान्य मुखौटे को तैयार करने पर 20 से 15 दिन, कई बार एक माह का समय लग जाता है। पहले सांचे को, व्यावसायिक मुखौटा निर्माता, जिनमें शुकदेव शर्मा प्रमुख हैं, हर साल नृसिंह चतुर्दशी से पूर्व नया सांचा और नया मुखौटा बनाते हैं। ये सारा काम, वर्तमान में अत्यंत श्रद्धा तथा भक्तिभाव से किया जाता है क्योंकि अब इसे 'व्यवसाय' की अपेक्षा, धार्मिक भावना से किया जाता है।

मुखौटा निर्माण के बाद, मुखौटे को कलाकार को 'धारण' कराना भी एक श्रमसाध्य और कलात्मक कार्य है। कलाकार का चुनाव भी बड़ी सावधानी से किया जाता है। विशेषतः नृसिंह और वाराह का मुखौटा धारण करने वाले का शारीरिक रूप से हष्ट पुष्ट, स्वस्थ, नीरोगी और धार्मिक होना भी जरूरी है। नृसिंह का मुखौटा और उस की पूरी ऊपरी साज सज्जा का वजन ही लगभग 8 से 10 किलो तक हो जाता है, इसके अलावा नीचे का वस्त्र -विन्यास भी खासा भारी -भरकम होता है। विशेष बात यह होती है कि मुखौटा में यद्यपि सांस लेने की पर्याप्त गुजांइश होती है, तथापि नृसिंह चतुर्दशी सामान्यतः अप्रैल- मई की गर्मी में आती है। गरमी में इसे धारण करना और फिर नृत्य करना बेहद ही श्रम साध्य कार्य है, जाहिर है, कलाकार का स्वस्थ होना बेहद जरूरी होता है।

मुखौटे को कलाकार को 'धारण' कराने की प्रक्रिया को यहां स्थानीय

भाषा में 'मुखौटा कसना '' कहा जाता है। स्थानीय लोगों की भावना है कि नरैसिंह तथा वराह के भारी भरकम मुखौटे को 'कसने' के लिए पहले कलाकार के पूरे चेहरे पर ठोड़ी से सिर तक पतले कपड़े की कई-कई, लंबी परतें चढ़ाई जाती हैं और उसे मजबूत डोरी से बांधा जाता है, ताकि मुखौटा ठीक से 'फिट' हो सके। विशेषत: नृसिंह के चेहरे को 'कसने' में काफी समय लगता है। सबसे पहले तो नरसिंह के कलाकार को गले से नीचे के सिंहाकृति वाले विशेष पोशाक पहनाई जाती है, क्योंकि मुखौटा कस जाने के बाद, उन्हें पहन पाना संभव नहीं हो सकता। इसके बाद कपड़े की परत कसने की प्रक्रिया जिसे 'ढाटा बांधना' भी कहते हैं, शुरू होती है। हालांकि अतिशयोक्ति के रूप में ऐसा कहा जाता है कि ''ढाटा'' बांधने में कई-कई थान' कपड़े लग जाते है, लेकिन संभवत: अनेक स्वरूपों के मुखौटों में तो ऐसा संभव है। हां, 2-4 मीटर कपड़ा नृसिंह के मुखौटे को 'कसने' में संभव है। इसके बाद, नृसिंह के 'केश' यानी सिंह के 'अयाल' के लिए 10 से 15 तक 'चंवर' बांधे जाते हैं। ये 'चंवर' वही हैं, जो मंदिरों में विग्रहों की आरती के समय हवा करने के लिए डुलाए जाते हैं। चंवर और मुखौटा ठीक से कस जाए और नृत्य करते समय मुखौटा ढीला न हो जाए या खुलकर गिर न जाए, इसकी पूरी तैयारी की जाती है। और खाली स्थानों पर पर्याप्त मात्रा में रूई भी भरी जाती है, ताकि मुखौटा मुकम्मल ढंग से 'कस' जाए।

आइए, अब वृंदावन की पारंपरिक नृसिंह लीला, उसका इतिहास और भूगोल समझने का प्रयास करते हैं।

वृंदावन में मथुरा के मुकाबिल (संभवत: किसी भी भारतीय शहर के मुकाबिल) अधिक नृसिंह मंदिर हैं। इनकी संख्या 8 हैं, जो इस प्रकार है-

1, मौहल्ला केशीघाट स्थित नृसिंह मंदिर (निजी तथा सर्वाधिक प्राचीन)
2, मौहल्ला अठखंभा स्थित नृसिंह मंदिर (पंचायती मंदिर)
3, मौहल्ला छीपी गली स्थित वराह-नृसिंह मंदिर (निजी)
4, श्री रंगनाथ मंदिर (दक्षिणात्य शैली का विशालतम मंदिर)
5, श्री गोदा हरिदेव दिव्यदेश मंदिर (मौहल्ला, गोपेश्वर मार्ग)
6, पत्थरपुरा मौहल्ला स्थित सूरमाकुंज,
7, गोपीनाथ बाग स्थित नृसिंह मंदिर (निजी)
8, मौहल्ला मदन मोहन घेरा स्थित नृसिंह टेकरी (निजी)

वृंदावन में नरसिंह लीला एक विराट लोकोत्सव की तरह मनाया जाता है, जो विशुद्ध 'वृंदावनी लोकोत्सव'' है। इस समय इसके 7 ऐसे स्थल सुनिश्चित हैं, जहां बरसों से पारंपरिक रूप से नृसिंह लीला का 'मंचन' होता है। यद्यपि, मंचन के बाद, इसका क्षेत्र पूरा वृंदावन ही हो जाता है। ये 7 स्थल इस प्रकार हैं-

1, रामजी द्वारा की नृसिंह लीला- प्रताप बाजार
2, अठखंभा क्षेत्र,(अठखंभा के पास)

3, गोविंद शरण पचौरी, (छीपी गली वाले) बजाजा क्षेत्र,

4, श्री गोपाल जी, वराह मंदिर वाले, वनखंडी महादेव क्षेत्र,

5, श्री राधेलाल सिद्ध- गोपीनाथ बाजार.

6, लगभग 10 वर्षो से कुछ स्थानीय उत्साही युवाओं ने शाहजी मंदिर के मुख्यद्वार पर भी नृसिंह लीला का मंचन प्रारंभ किया है। इस लीला के प्रति लोगों के रुझान का भी प्रतीक है। और इसकी लोकप्रियता का भी।

यहां यह विशेषरूप उसे उल्लेखनीय है कि यहां यह पर्व 2 दिन, यानी चतुर्दशी और पूर्णिमा-दो दिनों तक मनाया जाता है। चतुर्दशी की सायंकाल तो सारे शहर को 'सूचना' दी जाती है और नारद आदि अन्य पात्रों की लीला होतीहै। पूर्णिमा को ही 'खंभ

फटता है, और वास्तविक लीला होती है। ●

वृंदावन के नृसिंह मंदिर

1, केशीघाट मुहल्ला स्थित नृसिंह मंदिर

यह वृंदावन का सर्वाधिक प्राचीन नृसिंह मंदिर माना जाता है। लगभग 200 वर्ष प्राचीन होने के तो प्रमाण भी मिलते हैं। मंदिर के सेवायतों के अनुसार जयपुर के एक जौहरी यमुना में एक नौका के रास्ते अपने व्यापार के सामान के साथ गुजर रहे थे। केशीघाट नामक क्षेत्र में उनकी नौका अटक गई और बहुत प्रयासों के बाबजूद आगे नहीं बढ सकी। तब रात्रि में उन्हे स्वप्न में आदेश हुआ कि यहां पर घाट के नीच जल में मेरी नृसिंह स्वरूप में एक प्रतिमा है। उसे निकाल कर मेरे मंदिर में, निर्मित कर, उसे स्थापित करें। सुबह जौहरी ने वह प्रतिमा निकाली। पुनः स्थापन और पूजा का प्रश्न उपस्थित होने पर, निकटस्थ बेलवन निवासी एक ब्राह्मण श्री गोविंद लाल गोस्वामी से प्रार्थना की गई। मंदिर स्थापन के लिए स्थान और पूजनादि के लिए धन का अभाव होने के कारण उन ब्राह्मण ने मना कर दिया। जौहरी के आश्वासन पर और धन की व्यवस्था होने पर मंदिर निर्माण, नृसिंह विग्रह को वहां विधिवत स्थापित किया गया। इस स्थान पर आज भी उन्हीं गोविंद लाल जी के ही वंशज यहाँ के मंदिर में सेवा पूजा कर रहे हैं। उस जौहरी परिवार के वंशज भी समय समय पर यहां आकर अपनी सेवा देते हैं। मंदिर के वर्तमान सेवायत श्री शिवचरन लाल गोस्वामी हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि इसी मंदिर के वंशजों की एक शाखा राजस्थान के बंसूर नामक स्थान पर स्थित नृसिंह मंदिर में भी पूजा-अर्चना उपासना करते हैं। (देखें, इसी पुस्तक का परिशिष्ट-1 जहां नृसिंह मंदिरों की सूची दी गई है।)

वृंदावन के केशीघाट स्थित इस नृसिंह मंदिर में नृसिंह चतुर्दशी के दिन विशेष उत्सव, श्रृंगार, प्रसाद, भोग आदि होते हैं किंतु 'नृसिंह लीला' का कोई कार्यक्रम नहीं होता है।

2, अठखंभा स्थित नृसिंह मंदिर.

वृंदावन स्थित विख्यात राधावल्लभ मंदिर के द्वार के निकट, अठखंभा नामक स्थान पर गौदड़ बाबा नामक एक विप्र शालिग्राम में उत्कीर्णित नृसिंह देव की उपासना करते थे। बाबा के आशीर्वाद और नृसिंह भगवान की चामत्कारिक कृपा से राजस्थान के एक निसंतान भक्त सांवरमल को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। सांवरमलन संपन्न व्यक्ति थे। उन्होंने नृसिंह देव का एक छोटा-सा मंदिर वहां बनवा दिया और गौदड़ बाबा को भेंट कर दिया। गौदड़ बाबा के पुत्र भूदेव ने विवाह नहीं किया था। उन्हें यमुना महारानी की सिद्धि प्राप्त थी। यद्यपि नृसिंह उनके इष्ट थे। पारंपरिक कथन है कि भूदेव जी अत्यंत बलवान,

शारीरीक सौष्ठव के धनी, महाकाय, लगभग 7 फुट लंबे डीलडौल वाले व्यक्तित्व थे। सर्वप्रथम उन्होंने ही इस मंदिर और अठखंभा क्षेत्र में नृसिंह लीला, का प्रणयन प्रारंभ किया, तो उनमें नृसिंह का ही 'आवेश' आ गया। जिस विकराल स्वरूप में उन्हें आवेश आ गया था, उसी स्वरूप में उन्होंने काष्ठ का एक विशाल स्वरूप तैयार करवाया। यह विग्रह लगभग साढ़े नौ फुट लंबा है और एक ही काष्ठ खंड से तैयार भी किया गया है। कहते हैं कि लगभग 3 माह में यह बनकर तैयार हुआ। इस काष्ठ विग्रह की विधिवत प्राण-प्रतिष्ठा कर इसे मंदिर में स्थापित किया गया, और दैव संयोग से भूदेव महाराज की देह लीला भी संपूर्ण हो गई

। उसके बाद से यह मंदिर पंचायती हो गया। कालांतर में पुरूषोत्तम जी शर्मा, प्रारंभ में इस मंदिर के सेवायत रहे। उसके पश्चात् गणेशीलाल, श्री मुटकन लाल, श्री दिनेश चंद्र शर्मा, आदि सनाढ्य विप्रों द्वारा यहां सेवा चली आ रही है। वर्तमान में दिन्नू पंडा, इस मंदिर के सेवायत-पुजारी हैं। श्री गोपाल लाल जी, श्री पुरूषोत्तम शर्मा जी, जुगल किशोर मिश्र मुटकन जी, आदि यहां की नृसिंह लीला परंपरा में नृसिंह का स्वरूप धारण कर चुके हैं।

इस नृसिंह मंदिर की एक विशिष्ट किंवंदती यह भी है कि एक बार किसी कारणवश भूदेव जी से मिलने के लिए एक स्थानीय पुलिस अधिकारी अपने रौबदाब के साथ आया। जैसे ही उसका भूदेव जी से आमना-सामना हुआ, भूदेव जी में नृसिंह का 'आवेश' आ गया और थानेदर उनके इस रौद्र रूप को देखकर भाग खड़ा हुआ। यह लगभग 150 वर्ष से भी अधिक पुरानी कथा है।

3, रामजी द्वारा की नृसिंह लीला

वर्तमान में यह मंदिर अस्तित्व में नहीं है। किंतु स्थानीय छीपी गली स्थित इस मंदिर के नाम पर होने वाली नृसिंह लीला भी काफी पुरानी है।

वर्तमान में इस मंदिर के नाम की 'कीर्तिरक्षा' के रूप में, स्थानीय लोगों के सहयोग से एक अत्यंत भव्य नृसिंह लीला का मंचन स्थानीय प्रताप बाजार में किया जाता है। पारंपरिक दृष्टि से यह अठखंभा वाले नृसिंह मंदिर के सेवायतों का यह 'गुरुद्वारा' या 'गुरुस्थान' है। पारंपरिक रूप से 'श्वेत वराह' का स्वरूप धारण करने वाला कलाकर एक नारियल और कुछ भेंट लेकर इस गुरुद्वारा में आता है। स्थान खत्म हो जाने के कारण अब यहां प्रतीकात्मक ''भेट'' दी जाती है। प्रताप बाजार की इस लीला में स्वरूप धारण करने वालों में बांके धरती धकेल, देवी पंडा, बंशीलाल, ब्रजेश और गोपाल बौहरे का नाम उल्लेखनीय है।

4 गोपीनाथ बाजार स्थित नृसिंह लीला.

इस क्षेत्र में, राधेलाल सिद्ध नामक एक परिवार, लंबे अर्से से नृसिंह भक्त है, और वह पारंपरिक रूप से नृसिंह लीला का आयोजन करते हैं। श्री कुंज बिहारी सिद्ध, श्याम बिहारी सिद्ध, वर्तमान में इस लीला

का आयोजन विधिवत कराते हैं। इनके परिवार में नृसिंह भगवान शालिग्रा म में उत्कीर्णित हैं, और परिवारिक मान्यताओं के अनुसार सवा दो सौ साल से वह उनके यहां पूजित हैं।

5 मदन मोहन मंदिर घेरा परिसर की नृसिंह लीला.

काफी लंबे समय से स्थानीय युवाओं द्वारा यहां पर भी नृसिंह लीला का आयोजन होता है। दरअसल इस क्षेत्र में, नृसिंह टेकरी नामक एक प्राचीन मंदिर है और वहां नृसिंह देव का श्री विग्रह भी स्थापित है। मंदिर की वर्तमान स्थिति शोचनीय है, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय यह वैभव शाली मंदिर रहा होगा और वृंदावन की पारंपरिक नृसिंह लीला के क्रम में यहां भी नृसिंह लीला की आती है। यह क्रम आज भी बदस्तूर जारी है।

6 शाह मंदिर के द्वार एंव बांके बिहारी मंदिर के चबूतरे पर नृसिंह लीला

इसे वृदावन में नृसिंह लीला के प्रति श्रद्धा और असीम लोकप्रियता ही कहा जाएगा कि विगत 10 वर्षो से वृदावन के 2 अत्यंत सुप्रसिद्ध मंदिरों के विशाल द्वार-प्रांगणों/चबूतरों पर भी स्थानीय युवाओं ने नृसिंह लीला का जबर्दस्त प्रदर्शन करना प्रारंभ कर दिया है। ये दो प्रसिद्ध मंदिर और स्थल हैं- शाह मंदिर के द्वार का प्रागंण और विख्यात बांके बिहारी मंदिर का चबूतरा। ये दोनों आयोजन भी पारंपरिक हैं और दर्शनीय हैं।

7 छीपी गली स्थित वाराह मंदिर की नृसिंह लीला.

यहां वृंदावन की सबसे प्रसिद्ध पारंपरिक नृसिंह लीला का आयोजन होता है।, जो लगभग 200 वर्ष प्राचीन है और अद्यतन जारी है।

छीपी गली में एक प्रसिद्ध वराह मंदिर है। मंदिर में लगभग डेढ़ फुट ऊंची काले पत्थर से निर्मित एक वाराह मंदिर में स्थापित है। सामने से देखने पर, बांई ओर एक नृसिंह प्रतिमा भी विराजित है, तथा दाहिनी ओर. एक अति प्राचीन मुखौटा भी रखा है, जिसकी आज पूजा होती है। यह मुखौटा भी नृसिंह का ही है। है। इस मुखौटे के बारे में कहा जाता है कि बिल्कुल आरंभ में, जब यह मुखौटा पहनकर एक विप्र नृसिंह लीला के मंचन के लिए तैयार हुआ, तो दैवयोग से उस ब्राह्मण में ऐसा आवेश आया कि उसके हाथों-पांवों के बीसों नाखून एकदम से बढ़ गए। ऐसी स्थिति में, जन समुदाय, मुखौटे को चादर से ढंककर मंदिर में ले आए और उसे मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया उस विप्र का भी कालांतर में निधन हो गया, तब से आजतक उस मुखौटे को किसी को भी धारण नहीं कराया गया और वह पूजित है। वर्तमान में यह मंदिर, मंदिर के पुत्री वंश में सेवायत गोविंद शरण पचौरी के पास है, जहां प्राचीन काल से नृसिंह लीला की परंपरा है। जानकारी मिली है कि एक बार अशौच सूतक होने पर द्वादशी पूर्ण पर, सांयकाल लीला का मंचन किया गया। तभी से, 1972 से, इस लीला मंचन की परंपरा के 2 भाग हो गये। मंदिर के पूर्व उत्तराधिकारी और पैतृक वंशज गोपाल लाल जी वराह वाले का परिवार भी इस लीला का मंचन करता है। पहले इस मंदिर की लीला एक ही स्थान पर होती थी, अब

इसी कारण, 2 स्थानों पर होती है। गोपाल लाल जी वराह वाले (पैतृक वंशज) अपनी लीला वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को बनखंडी तिराहा नामक स्थानीय स्थान पर प्रदर्शित करता है। यहीं पर ''खंभा फाड़कर'' नृसिंह लीला का प्रदर्शन होता है। उधर गोविंद शरण पचौरी जी (वराह मंदिर के सेवायत) की परंपरा में भी नृसिंह लीला का आयोजन होता है, और वह स्थानीय '' बजाजा'' नामक बाजार में एक निश्चित स्थान पर होता है।

नृसिंह लीला के इस अति प्रसिद्ध और पारंपरिक लीला में नृसिंह का मुखौटा धारण करने वाले प्रसिद्ध महानुभावों में प्यारे लाल जी वराहजी वाले बहुत ही प्रसिद्ध रहे हैं। पुराने लोागों का कहना है कि वह भारी भरकम मुखौटा तो धारण करते ही थे, ''खूंटीदार खंडाऊं'' पहनकर नृत्य करते थे, जो अत्यंत आश्चर्यजनक होता था। खंडाऊं पहनकर वजनी मुखौटा धारण कर नृत्य करना अत्यंत कठोर साधना से ही संभव है। अब तक, इस नृत्यलीला में मुखौटा धारण करने वाले कलाकारों में श्री इंद्रनारायण जी, श्री गोपाल लाल जी, श्री रम्मो सरदार केशीघाट वाले, श्री हरिशंकर जी, श्री देवती पंडा, श्री कमल स्वरूप सिद्ध, श्री श्याम सुदंर वराह जी वाले, रामनारायण ब्रजवासी, श्रीराम बौहरे, कृष्णनारायण, लक्ष्मीनारायण (गुल्लू) मन मोहन मुकुट वाला, गोविंद शर्मा, श्रीकांत बौहरे, जितेंद्र कुमार शर्मा, पं० सुदर्शन सेनू एंव गोपाल नारायण, आदि नृसिंह मुखौटा ध ाारण कर चुके हैं। साथ ही बजाजा तिराहे की नरसिंह लीला के मंचन का नेतृत्व संजय वराहजी वाले लीला 47 वर्ष पुरानी है।

अत: वृदावन की इस नृसिंह लीला का यथासंभव विस्तृत उल्लेख हमने कर दिया है। इस लीला का, अपने शोध और खोज के दौरान, जो पुरातन - प्रारम्भिक उल्लेख हमें मिला है, वह है, गोपाल राय नामक एक रससिद्ध कवि के द्वारा रचित ''वृंदावन धामानु रागावली में। यह एक अप्रकाशित पांडुलिपि है और इसका रचना काल संवत् 1900 (सन् 1843) माना गया है। इस पांडुलिपि को तत्कालीन 176 वर्ष प्राचीन 'वृदावन का इतिहास' माना जा सकता है। यह दुर्लभ पांडुलिप सुरक्षित है और इसका प्रकाशन होना चाहिए।

उक्त ग्रंथ में वर्तमान छीपी गली को ''वाराह गली'' लिखा गया है। बजाजा बाजार की नृसिंह लीला पर भी गोपाल राय ने लिखा है-

''परमारथी कल्यानदास क केशव स्वरूपा।
पुनि वाराहवारी सुगली के ठाकुर सुनहू अनूपा।। (अ.5/20)
नृसिंह लीला होत जहां, तहां, श्री वाराहजु वहाँ ही।
करत बजाजौ मिलि कै सब, तंह बीच बजाजे मांही।।(5/11)

वर्तमान छीपी गली स्थित इस अत्यंत प्राचीन वराह मंदिर के विषय में भी गोपाल राय ने लिखा है कि एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण ने यह श्री विग्रह, वराह मंदिर के पूर्वजों को सुयोग्य और आचार-विचार वाला ब्राह्मण ''मानकर उन्हें भेंट किया था। गोपाल राय लिखते हैं।

महापुरुष इक तीरथ करते वृंदावन में आए।
श्रीवाराह सेव्य अपने, यहां पधरावन ठहराए।।
द्विज धनश्याम घरनि के घर घुसि, दया धरम सुचि दैख्यौ।
ये वाराह दये जिनकौ तिनि भाविक जानि विशेष्यौ।।

इसके अलावा, ऊपर जिस निवर्तमान ''रामजी द्वारा'' मंदिर की नृसिंह लीला का उल्लेख है, गोपाल राय ने अपनी रचना ''वृदावन धामानुरागवली के अध्याय 20 में उसका भी उल्लेख इस प्रकार किया है-

पुनि रेतिया बाजार तहां इक बाजत रामजी द्वारौ।
कुशल सिंह चौधर बजायौ, तहां मंदिर इक मारौ।।
दीघहि के गिरधारी द्विज के तहं गोपाल बिहारी।
तहां रामानुजदास विराजत, भजनानंद पुजारी।।
तहां नृसिंह लीला, रथ यात्रा जलयात्रा हू होई।।

साथ ही, ऊपर हमने वृदावनस्थ जिन नृसिंह मंदिरों का उल्लेख किया है, उनमें से, दाक्षिणत्य शैली में बने रंगनाथ मंदिर में यद्यपि 'नृसिंह लीला' नहीं होती है, तथापि वहां एक ही शिला खंड पर आगे-पीछे सुदर्शन चक्र और नृसिंह विग्रह उत्कीर्णित है। किंतु भक्त नृसिंह चतुर्दशी का व्रत रखते हैं इसी तरह गोदा हरिदेव दिव्यदेश मंदिर में भी दाक्षिणात्य परंपरा में श्याम शिला पर आगे-पीछे सुदर्शन चक्र एंव नृसिंह उत्कीर्णित है। पत्थरपुरा स्थित बड़ी सूरमा कुंज में, गौड़ीय परम्परा के अनुसार, शालीग्राम शिला में मुख खोले, मूंछें वाली नृसिंह विग्रहाकृति विराजमान है। इस शिला को मुल्तान से लाया हुआ माना जाता है। परम्परा से ऐसा माना जाता है कि नृसिंह का वास्तविक अवतरण वर्तमान पाकिस्तान के मुल्तान शहर में हुआ था। वहाँ आदि काल में विदेशी आक्राताओं द्वारा निरंतर क्षति पहुँचाई जाती रही। और बार बार मंदिर भी बनवाए जाते रहे प्रख्यात पुरातत्वविद् का कनिंधम ने 1853 में इस मंदिर के बारे में लिखा है। इस मंदिर के अवशेष अब भी वहां हैं। 1947 में बाबा दास बत्रा वहां से नृसिंह भगवान की प्रतिमा ले आए जो अब हरिद्वार में कहीं, इसी तरह, मथुरा के चौ बच्चा मुहल्ले में स्थित नृसिंह मंदिर में मुल्तान के ही नृसिंह मंदिर का एक मुखौटा, जो लगभग 300 साल पुराना बताया जाता है, पूजित है। मुल्तान के तत्कालीन राजपुरोहित पंडग चतुर्वेदा, इसे मथुरा लाए थे। मथुरा में ही गोवर्धन में, चकलेश्वर मंदिर मार्ग पर भी एक नृसिंह मंदिर है।, यहं भी नृसिंह चतुदर्शी के दिन बड़ा उत्सव होता हैं। ●

कुछ प्रसिद्ध भारतीय नृसिंह मंदिरों की सूची

(1) नरसिंह मंदिर, केशीघाट, वृंदावन, मथुरा. उ.प्र.
(2) ‘‘ मलूकपीठ. वृंदावन,
(3) ‘‘ 5 भावली, 56-1- k-m राज.
(4) ‘‘ नंदगांव, 34- k-m- मथुरा उ.प्र./
(5) फालैन स्थित प्रहलाद मंदिर कोसीकलां के पास।
(6) ‘‘ धौलपुर, 100- k-m- राज.
(7) नरसिंह हनुमान मंदिर नई दिल्ली. 127.-km
(8) नरसिंह मंदिर घाटी 128-km (गावदागूजर) राज.
(9) वंशीवाले बाबा. जयपुर राज.
(10) नरसिंह मंदिर. नसरपुर राज.
(11) नरसिंह मंदिर राधावल्लभ मंदिर. अठखंभा वृंदावन,
(12) ट्रस्ट नरसिंह मंदिर, अलीगढ़ उ.प्र.
(13) हसमपुर. राज.
(14) मलुताना. राज.
(16) लक्ष्मीनरसिंह मंदिर, खातीपुरा, जयपुर, राज.
(17) करहल, उ.प्र.7
(18) बंसुर. नबल गोसवामी राज.
(19) ब्रिजवास, 141-p k-m- राज.
(20) कोटपुतली, 148’5. राज.
(21) लाहबाड, राज.
(22) चकबहादुरपुर. म.प्र.
(23) बंधावा, हिंडौन, राज.
(24) बांदी कुई, राज.
(25) किसेरा, नूरपुर पिनौनी, उ.प्र.
(26) जोशीमठ, उत्तराखंड,
(27) लक्ष्मीनरसिंह मंदिर, कोट पुतली, राज.
(28) कुहादा, राज.
(29) जलालपुर, राज.
(30) पारीता, राज.
(31) नरसिंह मंदिर– काशी, बनारस (उ०प्र०)
(32) माजरा, राज.

(33) दौसा, राज.
(34) नरसिंह मंदिर नीमौथा, राज.
(35) मुख्य, मंदिर, हिंडौन, राज.
(36) महाराज नर सिंह मंदिर, खैरौली हरियाण,
(37) बालाजी, समाज, रामगढ़ राज.
(38) ऊदामंदी राज.
(39) आलमपुर, म.प्र.
(40) सिद्धपीठ हरिद्वार उत्तराखंड,
(41) झारेदा, राज.
(42) लक्ष्मीनरसिंह मंदिर, नांगल, जयपुर राज.
(43) रौल, राज.
(44) पद्मनाभ मंदिर भी कहते है। इटावा, उ.प्र.
(45) 1645 में स्थापित हजारीबाग, कार्तिपूर्णिमा, खपरिया गांव राज.
(46) 8. वीं सदी - जोशीमठ, चमोली जिला, उत्तराखंड,
(47) रायपुर, 1148 वर्ष पुराना मंदिर, ब्रह्मपुरी, (म.प्र.)
(48) डिंडौल करौली, राज. में भी मंदिर/ यू. ट्यूब.पर
(49) लक्ष्मी नरसिंह भद्रावती, सिमोंग, कर्नाटक,
(50) आंध्र-अहो विलाम, कुरूनुल जिला से - 140 k-m 21-
(51) जम्मू में भी है एक नरसिंह मंदिर
(52) उड़ीसा, बारामगढ़ के पैक्काल के पास, गंधमर्दन पहाड़ियों के/ पाटनगढ़ के राजा बैजल सिंह देव ने 1313 में इस मंदिर वी नींव रखी। 45 फीट उंचा मंदिर
(53) मध्यप्रदेश का नरसिंह पुर जिला का नरसिंह मंदिर सरंक्षित किया गया।
(54) नृसिंह मंदिर, भूतेश्वर मथुरा ●

नृसिंह लीला नृत्य नाट्य के पात्रों के पौराणिक संदर्भ.

ब्रज भूमि के नृसिंह सिंह लीला के नाट्य-नृत्य में अनेक पौराणिक पात्रों का मंचन पर आविभवि रहता है और वे नृत्याभिनय करते हैं। इनमें से अनेक पात्र ऐसे हैं, जो मानवेतर छवि के हैं। उनके लिए ही 'मुखौटों, को धारण करके नृत्य किया जाता है। इन सभी, पात्रों का संक्षिप्त पौराणिक उल्लेख एंव संदर्भ यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) वराह.

विष्णु के दस अवतारों में वराह का स्थान तीसरा है। वराह के अवतार को लेकर एक संपूर्ण पुराण ' वराह पुराण' उपलब्ध है।वराह की मुखाकृति 'शूकर' के समान है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार भगवान विष्णु ने एकाणविजल में मग्न उपलब्ध हो चुकी पृथ्वी का उद्धार 'वराह' स्वरूप धारण करके ही किया था और हिरण्याक्ष नामक राक्षस का वध किया था। वराह पुराण के अलावा इस कथा का महाभारत के सभा-पर्व (38/29) में भी उल्लेख मिलता है। 18 पुराणों में परिगणित वराह पुराण में तो स्वंय भगवान विष्णु ने वराह अवतार की कथा पृथिवी से कही है। इसके अलाबा स्कंद पुराण के 'बदरिकाश्रम माहात्म्य' में बदरिका-क्षेत्र

में 'वाराही शिला' नामक एक तीर्थ है। मान्यता है कि हिरण्याक्ष के बध के बाद, अगले प्रलयकाल तक उन्होंने यहीं शिला रूप में निवास किया था।

मथुरा में शत्रुघ्न द्वारा, वराह के विग्रह की स्थापना का उल्लेख वराह पुराण (163/64) में भी मिलता है। मथुरा में वराह की मूर्ति भी पुरातत्व विभाग द्वारा उत्खनन में प्राप्त की गई है। जैन परंपरा में वराह का अंकन, तीर्थकंर पार्श्वनाथ के 'यक्ष' के रूप में होता है।

नृसिंह लीला में 3 प्रकार के वराह माने जाते हैं- श्वेत वराह, नील वराह, हरित वराह। इसकी मान्यता इस तरह है कि श्वेत वराह, साक्षात् अवतार हैं। समुद्र में जाने से वह ''नील वराह'' हुए और हिरण्याक्ष-वध के उपरांत, वह 'हरित' वराह हो गए।

(2) **नृसिंह**

नृसिंह या नरसिंह इस लीला - नृत्यानाट्य के प्रमुख और केंद्रीय पात्र हैं। यह विष्णु के चौथे अवतार हैं और इनकी संपूर्ण कथा को लेकर 'नृसिंह पुराण' लिखा गया है। इसे उपपुराण माना गया है।

नृसिंह पुराण के अलावा नरसिंह के अवतार की कथा, ब्रह्मांड पुराण, वायुपुराण, विष्णु पुराण श्रीमद भागवत तथा मत्स्यपुराण में भी आई है।

ब्रह्मांड पुराण - 3/5/ 26-27 / 57/57

वायु पुराण - 67/66 / 97/73 / 98/73 / 111/72

विष्णु पुराण - 1/20/32

मत्स्य पुराण - 53/50/ 285/6 तथा अध्याय 161 से 163 तक।

मथुरा- वृंदावन की नरसिंह नृत्यलीला का आधार उपरोक्त पुराणों के अलावा 'भागवत पुराण' है। भागवत पुराण में भी नृसिंह लीला का पर्याप्त उल्लेख हैं। देखें- भागवत पुराण- 2/7/14, 5/18/7-14, 7/8/15-16, 10/2/40 /

वराह शिला की भांति नृसिंह शिला का भी उल्लेख स्कंद पुराण के बदरिका आश्रम माहात्य में मिलता है।

भारत में ढेरों सारे नृसिंह मंदिर है। जितने संभावित खोजे जा सके, उनकी सूची हमने इसी पुस्तक के अगले परिशिष्ट में दी है। पौराणिक कोश (पृष्ठ 281) के अनुसार मुलतान (वर्तमान पाकिस्तान) में 'नृसिंह पुरी' नामक एक तीर्थनगरी थी, जहां हिरण्यकशिपु के वध की घटना घटित हुई, बताई जाती है। मथुरा के भी एक नृसिंह मंदिर में, वहीं, मुल्तान का एक नृसिंह का मुखौटा रखा हुआ है। जो पूजित है। अन्य कई स्थानों पर भी ऐसी मान्यताएं हैं। लेकिन नृसिंह लीला का जैसा भव्य एंव दिव्य नृत्यलीला मंचन मथुरा में, विशेषत: वृंदावन में, एक 'उत्सव' के तौर पर वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को होता है, वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं होता हो।

(3) <u>हिरण्यकशिपु</u>

हिरण्यकशिपु को हिरण्याक्ष का भाई माना जाता है। दोनों दुर्दातं, विष्णु विरोधी दैत्य थे, जिन के वध के लिए विष्णु ने वराह तथा नृसिंह के रूप में अवतार लिए। भागवत पुराण (6/6/34-37 तथा 7/2/18-27) के अनुसार ये दोनों भाई पूर्वजन्मों में ये विष्णु लोक के द्वारपाल थे और इनके नाम जय तथा विजय थे। सनकादि ऋषियों के श्राप से ये असुर हो गए थे और कालांतर मे कश्यप की पत्नी दिति से उत्पन्न हुए। शिवपुराण तथा रुद्र संहिता (5/42) के अलावा रामचरित मानस में भी यह कथा मिलती है। (बाल कांड-121) मथुरा-वृंदावन की लीला नृत्य भूमिका में हिरण्यकशिपु राक्षस के लिए भी पहले मुखौटे पहने थे। संभवत: अब नहीं बनते।

(4) <u>गणेश</u>

वृंदावन की नृसिंह लीला नृत्य में सर्वप्रथम गणेश का का ही नृत्याभिनय होता है। वैसे भी, पांरपरिक रूप से गणेश को 'प्रथम पूज्य देव' का अनुग्रह प्राप्त है। गणेश के संदर्भ में तमाम कथाएं एंव उपाख्यान हैं और उन्हें भगवान शिव का पुत्र माना जाता है। गणेश की कथाओं को लेकर एक 'गणेश पुराण' भी उपलब्ध है जिसे उपपुराण माना जाता है। लीला - नृत्य में गणेश का भी मुखौटा धारण करके नृत्य प्रारंभ करने की परिपाटी है। प्रसिद्ध आख्यान है कि

माता पार्वती ने अपने मैल से गणेश का निर्माण किया था और शनि की दृष्टि से इनका सिर कट गया था। बाद में विलाप पर विष्णु ने पुष्पभद्रा नदी के तट पर सोते हुए एक हाथी का सिर जोड़ कर इन्हें इस 'गजानन' रूप में प्रस्तुत किया। यह ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है। मत्स्य. - (154 / 1502- 505) तथा ब्रह्मांड पुराण (3/41/37) में भी गणेश के जन्म एंव आख्यान हैं। गणेश का पूजन भारत से बाहर भी नेपाल, बर्मा थाईलैंड, चीन आदि में होंता रही है। मथुरा से भी गणेश की एक प्राचीन मूर्ति उत्खनन में मिली है। जैन परंपरा में भी एक तीर्थकर प्रतिमा में 'गजमुख' नामक एक यक्ष को उत्कीर्णित करने का विधान मिलता है। गणेश या गणपति भारत के एक अत्यंत लोक प्रिय देवता हैं और विशेषकर महाराष्ट्र में इनकी बेहद मान्यता है।

(5) <u>हनुमान</u>

हनुमान भारत के अत्यंत लोकप्रियदेवता हैं और रामलीलाओं के तो वे अनुठे पात्र है। मथुरा की नृसिंह लीला में अहिरावण वध का भी नाट्य प्रदर्शन नृत्य के माध्यम से किया जाता हैं। सुविख्यात प्राच्यविद डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने हनुमान को अत्यंत प्राचीन लोक देवता माना है। और मंदिरों में 'यक्ष' के ही एक अन्य रूप में उनकी उपासना का उल्लेख किया है।

यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ऐसी अनेक प्राचीन मूर्तियां मिली हैं, जिनके स्वरूप में नृसिंह, हनुमान तथा वराह-तीनों के ही स्वरूप मिश्रित हैं और यह तय करना मुश्किल है कि वह मूलत: किस 'देव' की प्रतिमा हैं। दिल्ली में एक मंदिर 'हनुमान नृसिंह मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। राजस्थान में हनुमान के अनेक मंदिर है। अकेले लखनऊ शहर में ही हनुमान के 50 से भी ज्यादा मंदिर हैं। भारत का शायद ही कोई शहर, यहां तक कि गांवों की बगीची आदि हो, जहां हनुमान न पधराए गए हों। पहलवानों के तो वे परम आराध्य हैं। पुराण तो छोड़िए, बाल्मीकि रामायण और महाभारत में भी हनुमान का उल्लेख मिलता है।

वानर की मुखाकृति वाले इस अत्यंत बलवान योद्धा दे वता की अजंनी का पुत्र माना जाता है। और वायु या मारूत इनके पिता माने जाते हैं। टेढ़ी ठोड़ी'' होने के कारण इन्हें हनुमान कहा जाता है। शिवपुराण (अध्याय 19-20) में इन्हें शिव का अवतार माना गया है। ये संपूर्ण भारत में पूजित हैं।

(6) <u>अहिरावण</u>

नृसिंह लीला में, वृंदावन की परंपरा में अहिरावण को ''अधिकट्या'' कहा जाता है, जबकि मथुरा में अहिरावण ही कहा जाता है। इसका भी मुखौटा बनता है- बड़ा अजीब सा। राम कथा तथा पौराणिक आख्यानों में अहिरावण का उल्लेख प्राय: नहीं मिलता। किंतु रामलीलाओं में अहिरावण की लीला दिखाई जाती है। कुंभकर्ण की मृत्यु पर पाताल लोक में अहिरावण राम का वध करने के लिए तांत्रिक अनुष्ठान करता है, तो हनुमान वहां 'काली' का वेश धारण करके जाते

हैं और उसका यज्ञ विध्वंस कर देते हैं। साथ ही अहिरावण का वध भी कर देते हैं। 'अहिरावण' नामक एक पाताल वासी रावण के पुत्र का उल्लेख कहीं कहीं मिलता है। बंगला रामायण 'कृतिवास रामायण' में' संभवत: इसका उल्लेख है।

(7) <u>ताड़का</u>

मथुरा की नृसिंह लीला में 'ताड़का' को स्त्री तथा पुरुष दोनों रूपों में, एक ही पात्र अभिनीत करके दिखाता है। दरअसल इसका, 'ताड़का' नामक एक राक्षसी और 'तारक') नामक एक असुर का पौराणिक उल्लेख है। स्थानीय लोक परंपरा में ताड़का को हिरण्यकशिपु की 'बहिन' भी माना जाता है। यह एक विचित्र बात है, कि पुराणों में हमें हिरण्यकशिपु की बहन 'होलिका' का उल्लेख कहीं नहीं मिला। जबकि लोक परांपरा में यह माना जाता है कि होलिका को अग्नि से न जलने का वरदान था और हिरण्यकशिपु के कहने पर वह प्रहलाद को गोद में लेकर अग्नि में बैठी थी। कहते हैं, होलिका जल गई और प्रहलाद का कुछ भी बाल बाँका नहीं हुआ।

(8) <u>प्रहलाद</u>

हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, नृसिंह तथा अवतार से संबोधित जितने भी पौराणिक ग्रंथ तत्संबंधी संदर्भ हैं। सभी में प्रहलाद का उल्लेख है और यह नृसिंह नृत्यलीला का केंद्रीय पात्र है। यद्यपि एक छोटे-नन्हें बालक (10 से 15 वर्ष) के रूप में यह 'पात्र' बनकर आता है, किंतु इसका कोई नृत्यादि का प्रस्तुतिकरण नहीं होता है। नृसिंह वध लीला के बाद आर्शीवाद प्राप्त करके स्तुति करने तथा बाद में, हिरण्यकशिपु के स्थान पर सिंहासनारूढ़ होने तक की इस पात्र की उपस्थिति रहती है। स्थानीय परंपरा में तो लोग न केवल छोटे-छोटे बच्चों को भी, 'अभय' प्राप्त कराने तथा 'डरने' से बचाने के लिए बच्चों को नृसिंह की गोद में देते है। श्रीमद्भागवत पुराण का पूरे 4 अध्याय (6 से 9) इसी कथा से पूर्ण हैं। नरसिंह पुराण में प्रहलाद की माता का नाम कंदायु लिखा है। दत्तात्रेय, शंड तथा मर्क इसके शिक्षक थे। भगवान नृसिंह की कृपा से यह दैत्य तथा दानवों का अधिपति बन गया था। मत्स्यपुराण (6/9) के अनुसार कालांतर में इसके आयुष्मान् शिवि, वाष्कल और विरोचन नामक पुत्र हुए और बलि इसका पौत्र बना। यह वहीं 'राजा बलि' थे, जिसके लिए वामनावतार हुआ था।

(9) <u>महिषासुर</u>

मार्कंडेय पुराण में रंभ नामक एक दैत्य के पुत्र के रूप में 'महिषासुर' का उल्लेख मिलता है, जिसका वध दुर्गा ने किया था। ब्रह्मांड पुराण (3/6/29) तथा वायुपुराण (68/28) के अनुसार यह रंभा से उत्पन्न मय दानव का पुत्र था। मत्स्य पुराण में भी (252/17-24) इस का उल्लेख है। ब्रह्मांड पुराण (4/29/75-88) के एक उपाख्यान के अनुसार यह दुर्गा के हाथों मारा गया था।

(10) दुर्गा (महिषासुर मर्दिनी)

शुक्ल यजुर्वेद का वाजसेनिय संहिता में अंबिका को रुद्र की भगिनी बहन कह गया है। कालिका पुराण के अनुसार दुर्गा की उत्पत्ति में उन्हें 'महामाया' कहा है। मार्कंडेय पुराण के अनुसार रूरूं के पुत्र दुर्ग नामक एक महा दैत्य ने जब देवताओं को आक्रांत किया, तब शिव ने 'देवी' को भेजा, उसने 'दुर्ग' का बध किया, तो देवी 'दुर्गा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। (स्कंदपुराण, काशीखंड, उत्तरार्ध, 72-71) भागवत में भी (10/2/11) तथा 56-35) में भी दुर्गा का उल्लेख है। दुर्गा के अनेक नाम-उमा, गौरी, शिवा, काली, भवानी आदि मिलते हैं। भागवत (11/27/29) में इनकी पूजा विधि मिलती है। नृसिंह लीला में 'दुर्गा' के पात्र का अभिनय, मथुरा में ही होता है।,

(11) रक्तबीज

मथुरा की नृसिंह लीला में 'रक्तबीज' नामक एक मसाअहूर का भी नृत्य नाट्य का प्रदर्शन होता है। 'दुर्गा सप्तशती' नामक ग्रंथ में शुंभ और निशुंभ नामक जिन 2 राक्षसों का उल्लेख है-ये असुर 'रक्तबीज' उसी का सेनापति था। देवी भागवत के अनुसार यह दैत्य अद्‌भुत था। इसके रक्त की प्रत्येक बूंद से एक नये राक्षस 'रक्तबीज' की उत्पत्ति हो जाती थी। अत: दुर्गा ने इसका रक्त पीकर ही इसे मारा था। यह भी कहा जाता है कि महिषासुर का पिता रंभ ही मरकर, फिर रक्तबीज के रूप में जनमा था। (स्कंद पुराण, काशी खंड)

(12) पृथिवी वंसुधरा-भूदेवी.

पृथिवी को स्त्री रूप में ब्रह्मा की पुत्री तथा नारायण (विष्णु) की पत्नी भी मान गया है। वराह ने ही हिरण्याक्ष का वध कर इसी पृथ्वी का उदधार किया था। वैसे महाभारत के सभापर्व (38-29) तथा भागवत (3/3/6) में उल्लेख मिलता है कि भगवान् वराह के साथ समागम होने के कारण इनका एक पुत्र 'भौमासुर' या 'नरका सुर' हुआ। श्री कृष्ण ने इसका वध किया. तो इसने स्वयं प्रकट होकर अदिति के दोनो कुंडल लौटाए थे। वैसे नृसिंह नाट्य लीला में 'पृथिवी' की भूमिका एक स्त्री रूप में ही है। जिसकी रक्षा, वराह भगवान, हिरण्याक्ष का वध करके करते हैं। प्राचीन मूर्तियों में वराह के साथ पृथिवी को 'स्त्री' रूप में ही दिखायागया है। आजकल के चित्रों में पृथिवी को गोलाकार दिखाया जाता है। पृथिवी का उल्लेख मत्स्यपुराण (10/1/35) वायु पुराण (42/78/81) ब्रह्मांड पुराण (2/20/1-4) तथा भागवम (4/18/13-27) में है।.

13 ब्रह्मा

चतुर्मुखी ब्रह्मा का उल्लेख सभी पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में मिलता है। ग्रह्मा से जुड़ीं अनगिनत कथाएं तथा उपाख्यान हैं। इन्हें हिंदू त्रिमूर्ति का प्रथम देवता और सृष्टिकर्ता माना जाता है। इनके मुख चार हैं तथा भुजाएं भी चार ही हैं। ब्रह्मी इनकी पत्नी

तथा हंस इनका वाहन माना जाता है। भृगु के शाप के करण इनकी पूजा नहीं होती। वैसे, माना जाता है कि पुष्कर में इनका एक मात्र मंदिर है। भागवत पुराण के अनुसार विष्णु की नाभि से इनकी उत्पत्ति हुई है। इन के 10 मानस पुत्र हैं. जो प्रजापति कहे जाते हैं। नृसिंह नाट्यलीला में इनकी भूमिका केवल हिरण्यकश्पिु को 'वरदान' देने वाली भूमिका के कारण है। इनका रूप स्वरूप बड़ा दिव्य-भव्य है।

14 इंद्र तथा वृत्रासुर

इंद्र भारतीय धर्माकाश का ऐसा ''चरित्र' है जिसका उल्लेख ऋग्वेद से लेकर लगभग सभी पुराणों और महाकाव्यों तक में हैं। ऋग्वेद में तो इंद्र की स्तुति के ही सर्वाधिक मंत्र हैं। इंद्र को स्वर्ग का अधिपति, और समस्त देवताओं का राजा माना जाता है। नृसिंह आख्यान को मथुरा की नृसिंह लीला में दर्शाया जाता है। प्रसिद्ध कथा है कि वृत्रासुर जैसे अजेय योद्धा का वध करने के लिए दधिचि जैसे ख्याति नाम ऋषि ने अपनी 'अस्थियां' दी थीं, जिनसे 'वज्र' नामक अस्त्र बनाकर इंद्र ने वृत्रासुर का वध किया था। इंद्र वृत्रासुर युद्ध तथा वध की का संदर्भ ऋग्वेद के साथ-साथ मत्स्यपुराण (154-111-131) में भी मिलता है। इसके स्कंद पुराण के माहेश्वर केदार खंड में, भी यह किया कथा मिलती है। दधीचि ऋषि का उल्लेख भागवत (6/9/51-55) में अनेक स्थानों पर किया गया है।

15 रूद्र

भारतीय परंपरा में 'शिव' को ही रुद्र रूप में माना जाता है, यद्यपि 11 (एकादश) रूद्र की पुरानी मान्यता है। गरूड़ पुराण में कुछ भिन्न नामों से इनकी गणना की गई है। ब्रह्मा के दोनों भौंहों के बीच भी जो क्रोध रूपी देवता प्रकट हुआ था, उसे ही प्रथम 'रूद्र' कहा गया। समस्त भूत, प्रेत, पिशाच, आदि इसी रूद्र से ही उत्पन्न माने जाते हैं। ब्रह्मांड पुराण (4/34/42), गरूड़ पुराण, कूर्भ पुराण (6/6/17) में रूद्र का उल्लेख मिलता है। मत्स्य, वायुपुराण में इन्हें ही 'महादेव' कहा गया है।.

16 लांगुरा.

परंपरा से भैरव को ही 'लांगुरा' कहा जाता है। प्राच्यविद् प्राचीन यक्ष को ही भैरव या लांगुरा मानते हैं। परंतु पौराणिक परंपरा में इन्हें शिव का गण माना जाता हैं। (ब्रह्मांड पुराण-(3/41/27) मत्स्यपुराण (158/24-179-1) के अनुसार यह रूद्र का ही एक नाम या रूप है। भैरव की मूर्ति किसी भी मंदिर में स्थापित की जा सकती है। पर मूलायतन में नही। शिव के एक गण, तथा भूत-प्रेत- पिशाच आदि के नेता या संरक्षक के रूप में नृसिंह नृत्य लीला में, मथुरा में इस पात्र को प्रस्तुत किया जाता है।.

इस तरह नृसिंह नृत्य लीला के उत्सव में नृत्याभिनय करने वाले उपरोक्त सभी पात्र, विशुद्ध भारतीय धार्मिक, पौराणिक और परंपरा से आप्लावित हैं और उनकी gekjh i`Fohu lkaLd`frd ijaijkl sxgjk ukrk gSA ●

संदर्भ ग्रंथ एंव अन्य संकलन सामग्री.

1, 'पौराणिक कोश,
राणा प्रसाद शर्मा,
ज्ञान मंडल लिमिटेड, काशी,

2, नृसिंह पुराण,
गीता प्रैस, गोरखपुर,

3, पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ,
ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा,

4, उत्तर प्रदेश पत्रिका का 'ब्रज अंक'
(सितंबर - 1984 अंक)
सूचना विभाग, लखनऊ,

5, 'वासुदेव शरण अग्रवाल, रचना सचंयन,
सं. कपिला वात्स्यायन,
साहित्य अकादमी, मंडी हाऊस, नई दिल्ली,

6, 'मथुरा का इतिहास,
प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी,
ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा,

7, जय श्री नरसिंह देव,
श्री कृष्ण बलराम मंदिर, वृंदावन, (मथुरा)
भक्ति वेदांत स्वामी मार्ग, रमणरेती, वृंदावन, मथुरा,

8, 'जैन संस्कृति कोश (प्रथमखंड)
भाग चंद जैन, भास्कर,
सन्मति प्राच्य शोध संस्थान् नागपुर. (महा.)

9, 'प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एंव मूर्तिकला.
डा० ब्रजभूषण श्रीवास्तव,
विश्वविद्यालय प्रकाशन् वाराणसी. (उ.प्र.)

10. श्री गोपाल राय कृत
'वृन्दावनधामानुरागावली'
(पांडुलिपि) अप्रकाशित
ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, (वृन्दावन).